लेखक

एवं

सम्पादक

मोतीचन्द जैन सराफ

सनावद (मध्य प्रदेश)

(आ० श्री धर्मसागरजी संघस्थ)

मूल्य

सम्यक् श्रद्धा

दिसम्बर, १६६६

प्रकाशक
(५०० प्रति)
श्री छोटेलालजी कैलाशचंदजी सर्राफ
टिकैतनगर (जिला बाराबंकी)
[लखनऊ–उत्तर प्रदेश]

सम्यक् श्रद्धान एवं समीचीन
ज्ञान प्राप्ति हेतु
प्रकाशित

मुद्रक:—
कुशल प्रिन्टर्स,
गोधों का रास्ता
जयपुर फोन नं० ७६०५२

श्री वीर निर्वाण सं २४९६
प्रथमावृत्ति
१०००

चारित्र चक्रवर्ती

प० पू० १०८ आचार्य श्री शान्तिसागरजी महाराज



प्राक्कथन

न सम्यक्त्व समं किंचित्, त्रैकाल्ये त्रिजगत्यपि
श्रेयोऽश्रेयश्च मिथ्यात्व—समं नान्यत् तनूभृतां

तीनों लोक में और तीनों कालों में इस संसारी प्राणी को सम्यक्त्व के समान हितकारी (कल्याणकारी) कोई भी वस्तु नहीं है और मिथ्यात्व के सदृश अकल्याणकारी कोई भी पदार्थ नहीं है। तात्पर्य यह है कि सम्यक्त्व रहित अवस्था के कारण ही यह जीव अनादि काल से संसार में परिभ्रमण कर रहा है। सम्यक्त्व रूपी रत्न मिल जाने के बाद इस जीव का संसार सीमित (अर्द्ध पुद्गल परावर्तन मात्र) रह जाता है।

सम्यक्त्व के होने पर जीव में ४ गुण प्रगट होते हैं। (१) प्रशम (२) संवेग, (३) अनुकम्पा, (४) आस्तिक्य। कषायों की मंदता को प्रशम भाव कहते हैं। संसार शरीर एवं भोगों से विरक्त होना संवेग है। प्राणीमात्र के हित की भावना अनुकम्पा है। जिनेंद्र भगवान द्वारा कथित जिनधर्म, जिनवाणी में निःशंक होकर श्रद्धान रखना आस्तिक्य है। जैसे:—जिनेश्वर ने स्वर्ग, नरक, सुमेरु आदि का वर्णन किया है। हम इन स्थानों को वर्तमान में प्रत्यक्ष नहीं देख सकते किन्तु फिर भी आस्तिक्य भावों से उनकी वाणी पर अटूट श्रद्धा होने से दिव्य ध्वनि प्रणीत पदार्थों का अस्तित्व

स्वीकार करते है। क्योंकि जिनेन्द्र भगवान ने घातिया कर्मों के अभाव मे प्रगट केवल ज्ञान के द्वारा तीनों लोकों का स्वरूप बतलाया है। दृष्टि एवं तर्क के अगोचर होते हुए भी भगवान की वाणी पर श्रद्धा रखना इसी का नाम सम्यक्त्व है।

आज चन्द्रलोक की यात्रा के विषय में थोडा विचार करके देखा जाये तो हमारे बहुत से जैन बन्धुओं की क्या स्थिति हो रही रही है। अमरीकी चन्द्रमा पर उतर गये एवं वहां की मिट्टी ले आये है। यह सब अमेरिका के लोगों ने टेलीविजन पर प्रत्यक्ष देखा है। आगे और भी उनके विशेष प्रयास जारी हैं। कई प्रकार की वैज्ञानिक कल्पनाएं छापी जा रही हैं। यह भी सूचित किया गया कि वहां आम जनता के लोग भी (लाख रुपये का) टिकट लेकर जा सकेंगे।

प्रिय बन्धुओं ! न तो सभी लोगों ने टेलीविजन से उन्हें इसी चन्द्र पर उतरते हुए देखा है और न वहां की मिट्टी ही सब लोगों को मिली है और न ही सभी लाखों का टिकट लेकर वहां जा सकते हैं। मात्र आगम और पूर्वाचार्यों के प्रति तरह तरह की अश्रद्धा एवं आशंका उत्पन्न कर करके अत्यंत दुर्लभता से प्राप्त हुए सम्यक्त्व रूपी रत्न को भी व्यर्थ में गवां रहे हैं।

इस प्रकार 'इतोभ्रष्टस्ततोभ्रष्टः' वाली उक्ति को चरितार्थ कर रहे हैं। अतः इतने मात्रा से ही अपनी श्रद्धा को न बिगाड़ें। अभी तो आगे इस सम्बन्ध में और भी खोजें होती रहेंगी।

अभी तो यह सोचने की बात है कि जब यहां (पृथ्वी) से ३१,६०,००० मील की ऊंचाई पर सबसे पहले ताराओं के विमान हैं, ३२,००,००० मील ऊपर सूर्य के विमान हैं तथा इन सबसे ऊपर अर्थात् ३५,२०,००० मील ऊंचे चन्द्रमा के विमान हैं जबकि अमेरिका द्वारा छोड़ा गया राकेट अपोलो ११ तो मात्र २ लाख ४०,००० मील ही गया है तथा चन्द्र विमानों के गमन की गति इतनी तेज (१ मिनट में ४,२२,७७३ ३१/१५४३ मील) है कि उस पर पहुंच पाना ही हम लोगों के लिए अति दुर्लभ है।

इस तरह इन सबको देखते हुए तो ऐसा अनुमान होता है कि वे लोग विजयार्ध पर्वत की श्रेणियों पर तो कहीं नहीं उतरे हैं और वहीं से मिट्टी लाये हैं।

चन्द्रमा का विमान ३६७२ मील का है। वहां पर देवों के ही आवास हैं। वहां की सर्वत्र रचना रत्नमयी है। वहां पर मिट्टी, कंकड़, पत्थर का क्या काम है।

टेलीविजन पर चन्द्रमा पूर्णिमा या अमावस्या के दिन मध्याह्न् काल में यदि देख कर बता सकें तो माना जा सकता है कि चन्द्रमा पर पहुंचे, नहीं तो सब बातें निरर्थक व भ्रमोत्पादक हैं

अमेरिकन समाचारों के अनुसार द्वितीय आषाढ़ के शुक्लपक्ष की सप्तमी को (भारतीय समयानुसार) रात्रि के १–३० पर चंद्र धरातल पर उतरे। इसका मतलब यह हुआ कि उस समय चंद्रमा

राहु के ध्वजदण्ड से ८ कला आच्छादित था तथा तुला राशि में प्रविष्ट था एवं चित्रानक्षत्र था। अर्थात् चन्द्र उस समय अस्त हो चुका था। यदि चन्द्रमा अस्त होने पर भी टेलीविजन पर देख सकें तो बतलाएं। हम यह निश्चय पूर्वक कहते हैं कि अस्त हुआ चन्द्र कभी भी दिखाई नहीं देगा। इसके विपरीत वैज्ञानिकों ने तो राकेट को चन्द्रमा पर उतरते हुए देखा। परन्तु जब चन्द्र ही नहीं दिखाई दे सकता तो राकेट-मानव को चंद्र धरातल पर उतरते देखा यह कथन सर्वथा असत्य एवं भ्रामक है।

समाचार पत्रों में एक बात और यह पढ़ने में आई कि प्रयोग से जाना गया है कि चंद्रमा की चट्टानें दो अरब से साढ़े चार अरब वर्ष पुरानी हैं यह मत अमेरिका के न्यूयार्क विश्वविद्यालय के चार बड़े वैज्ञानिकों का है। परन्तु बारीकी से अन्वेषण करने पर हजारों या दो चार लाख वर्ष पुरानी हो सकती हैं। लेकिन यह कहना कि वे ४॥ अरब वर्ष पुरानी हैं इस प्रकार के निर्णय में क्या प्रमाण है। इस तरह अनुमान से ही वैज्ञानिक लोग बहुत सी बातों को वास्तविक रूप में प्रगट कर देते हैं।

एक बार नव भारत टाइम्स से समाचार पढने में आये कि एक पुराना हाथी दांत मिला है जो कि ५० लाख वर्ष पुराना है। जबकि यह हजारों वर्ष पुराना भी हो सकता है। ऐसे कितने ही वैज्ञानिकों के अनुमान असत्य की श्रेणी में गर्भित हो जाते हैं।

प्राचीन पाश्चात्य विद्वान पृथ्वी को केवल ८४ हजार वर्ग मी०

था उससे कुछ अधिक मानते थे लेकिन उसकी खोज होने पर अब वह प्रमाण असत्य हो गया। पहले अमेरिका आदि का सद्भाव नहीं था। पृथ्वी को उतनी ही मानते थे। अब धीरे धीरे नई खोज से नये देश मिले; जिससे पृथ्वी बढ गई। पाश्चात्य भू-वेत्ता पृथ्वी को नारंगी के आकार गोल एवं घूमती हुई मानते थे, परन्तु इसके विपरीत अमेरिका के एक प्रसिद्ध वैज्ञानिक विद्वान ने पूर्व मत का खंडन करते हुए लिखा था कि पृथ्वी नारंगी के समान गोल नहीं है और सूर्य चन्द्र स्थिर नहीं हैं वे चलते फिरते रहते हैं। इस प्रकार का एक लेख लगभग २५–३० वर्ष पहले समाचार पत्रों में प्रकाशित हो चुका है।

जैन सिद्धांत ने ऐसी खोजों पर प्रकाश इसलिए नहीं डाला कि महर्षियों ने तो मुख्य रूप से मोक्ष प्राप्ति के साधन एवं आत्मा के विकास पर ही प्रकाश डाला है। ये सारे वर्तमान के वैज्ञानिक भौतिकवादी खोजपूर्ण साधन यहीं पड़े रह जावेंगे। इस वैज्ञानिक ज्ञान से आत्मा को सद्गति मिलने वाली नहीं है। वैसे सर्वज्ञ कथित वाणी मे प्ररूपित इन जड़ पदार्थों का अवधि ज्ञानी आदि ऋषियों ने एवं श्रुतकेवलियों ने द्वादशांग श्रुतज्ञान से जानकर स्वरूप निरूपण अवश्य किया है।

वर्तमान में मानव भोग विलासों में समय को व्यर्थ गवां रहे हैं। धार्मिक अध्ययन से शून्य होने के कारण ही आज वास्त-विकता से अनभिज्ञ हो रहे हैं। यही कारण है कि 'चन्द्र यात्रा'

के बारे में तरह २ की चर्चायें हो रही हैं। जबकि हमारे जैनाचार्यों ने लोक विभाग, त्रिलोकसार, तिलोयपण्णत्ति आदि महान् ग्रन्थों में तीनों लोकों की सारी रचना तथा व्यवस्था के बारे में पूर्णतया बारीकी से स्पष्टीकरण किया है लेकिन इस आर्थिक एवं भौतिक युग में किसी को इतना अवसर ही नहीं मिलता दिखाई देता जबकि वे अपनी निधि को देख सकें। आज हम लोग दूसरों की खोज पर मुंह ताकते रहते हैं।

इसी बात को ध्यान मे रखकर जन साधारण के हितार्थ सौर्य मण्डल के बारे में जैन आम्नायानुसार इसका ज्ञान कराने के लिए पू० विदुषी आर्यिका १०५ श्री ज्ञानमती माताजी ने लोगों के आग्रह पर सन् १९६९ के जयपुर, चातुर्मास के अन्तर्गत १५ दिन के लिए एक शिक्षण कक्षा चलाई थी, जिसमें स्त्री पुरुषों तथा बालकों ने बहुत ही रुचि पूर्वक भाग लेकर अध्ययन करके नोट्स भी उतारे थे। तभी से बहनों की यह इच्छा रही कि यदि यह विषय पुस्तक रूप में छपकर तैयार हो जावे तो आबाल गोपाल इससे लाभान्वित हो सकेंगे। जैन भौगोलिक तत्वों को सरलता पूर्वक समझ सकेंगे।

अत: सभी की भावना एवं आग्रह को लक्ष्य में रखकर मैंने उन्हीं नोट्स के आधार पर यह पुस्तक लिख कर तैयार की है। संभवत: इसमें कई त्रुटियां भी रह गई होंगी। अत: पाठकगण सुधार कर पढ़ें और सत्यता का स्वयं निर्णय करें।

पूज्य माताजी ने अस्वस्थ अवस्था होते हुए भी अथक परिश्रम

करके, अमूल्य समय देकर जो नोट्स लिखवाये थे उसी के आधार पर से यह बहुत से ग्रन्थों के साररूप यह छोटी सी पुस्तक तैयार की गई है। अतः हम माताजी के अत्यन्त आभारी हैं।

विशेष :—पूज्य माताजी कई स्थानों पर उपदेश के अन्तर्गत अकृत्रिम चैत्यालयों की रचना को लेकर त्रिलोक रचना में जैन भूगोल के आधार पर मध्य लोक में पृथ्वी कितनी बड़ी है? छह खंड की रचना कैसी है? उसमें आर्य खंड कितना बड़ा है? उसकी व्यवस्था कैसी क्या है? सुमेरु पर्वत आदि कहां किस रूप में है? इत्यादि विषय पर बहुत ही रोचक ढंग से प्रकाश डालती रहती है।

जब आप अपने संघ सहित शोलापुर चातुर्मास के उपरांत यात्रा करती हुई श्रीसिद्ध क्षेत्र, सिद्धवरकूट दर्शनार्थ पधारीं तब सनावद निवासियों के आग्रह पर सन् १९६७ का चातुर्मास वहीं स्थापित किया। तब वहां पर भी उपदेश के अन्तर्गत बहुत सुन्दर ढंग से अकृत्रिम चैत्यालयों की परोक्ष वंदना कराते हुए उपरोक्त जैन भूगोल पर विस्तृत प्रकाश डाला था।

तभी से हमारी यह भावना है कि यदि सुन्दर बाग बगीचों एवं द्वीप समुद्रों सहित खुले मैदान में जैन मतानुसार तद्रूप भौगोलिक रचना दर्शाई जावे तो समस्त जैनाजैन जनता को जम्बू-द्वीप सुमेरु पर्वत आदि की रचना साकार रूप में होने से समझना

सरल हो जावे। ऐसी रचना अपने प्रकार की एक अद्वितीय एवं दर्शनीय स्थल के रूप में देश विदेश के लोगों के आकर्षण का केन्द्र होगी। अतः पाठक गण इस पर विचार करें।

इस पुस्तक को पढ़कर जैन ज्योतिर्लोक को समझें। विशेष समझने के लिए लोक विभाग इत्यादि ग्रन्थों का स्वाध्याय करें एवं अपने सम्यक्त्व को दृढ़ बनावें। यही मेरी शुभ कामना है।

मोतीचंद अमोलकचदसा जैन सराफ

जयपुर — सनावद (मध्यप्रदेश)

८–१२–६९ — (आचार्य श्री धर्मसागरजी संघस्थ)

दो शब्द

प्रस्तुत 'जैन ज्योतिर्लोक' नामक पुस्तक समयोचित एवं सार गर्भित है। विभिन्न ग्रन्थसागर का मन्थन करके गृह नक्षत्रों की व्यवस्था सम्बन्धी प्रकरण तथा भूलोक एवं अकृत्रिम चैत्यालयों का सुन्दररीत्या विवरण संकलित किया गया है।

पुस्तक के आद्योपांत पठन से वैज्ञानिकों की खोज की वास्तविकता का अन्दाज भली प्रकार लगाया जा सकता है कि वे लोग चन्द्रयात्रा में कहां तक सफली भूत हुये हैं तथा उनका अन्वेषण कितने अंशों में सत्य है।

पुस्तक के लेखक श्री मोतीचन्दजी सराफ सुपुत्र श्री अमोलकचन्दजी सराफ मध्यप्रदेश के सुप्रसिद्ध शहर इन्दौर के निकट सनावद नगर के निवासी हैं। वैराग्यपूर्ण भावनाएं होने के कारण २० वर्ष की आयु में ही आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत धारण कर लिया।

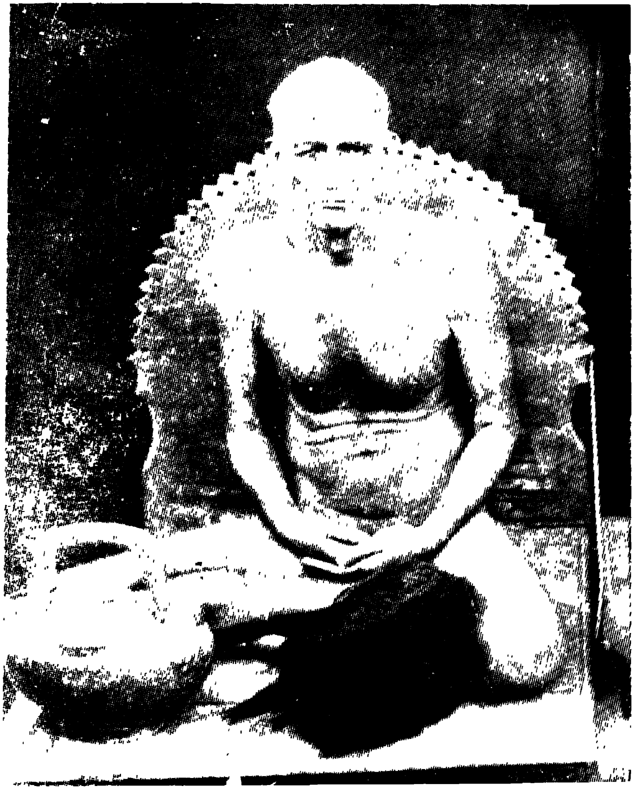
अभी जब २ वर्ष पूर्व परम विदुषी आर्यिका पू० श्री ज्ञानमती माताजी ने ससंघ सनावद चातुर्मास किया था तभी से उनसे प्रभावित होकर अध्ययन करते हुए परम पू० स्व० आचार्य श्री शिवसागरजी के संघ में गत २ वर्षों से रहकर ज्ञान प्राप्ति में दत्तचित है। गत वर्ष शास्त्री प्रथम वर्ष में गोम्मटसार एवं व्याकरणादि की परीक्षा पास करके इस वर्ष शास्त्री द्वितीय वर्ष में जैनेन्द्र महावृत्ति, अष्टसहस्त्री, राजवार्तिक आदि विषयों का पठन पू० माताजी से ही कर रहे है। पू० गुरुओं के सानिध्य में रहकर शीघ्र ही योग्य विद्वान एवं लेखक बन जावेंगे।

ऐसे होनहार नवयुवक ही समाज एवं धर्म के स्तम्भ है। अन्त में परम उपकारी महान् साधुओं (मुनि, आर्यिकाओं) के प्रति नत मस्तक होकर त्रिकाल नमोस्तु करता हुआ लेखक को हार्दिक बधाई देता हूं।

पं० इन्द्रलाल शास्त्री
विद्यालंकार, जयपुर

२५ दिसम्बर १९६९

प० पू० १०८ आचार्य श्री वीरसागरजी महाराज



जन्म
वीरगांव महाराष्ट्र
वि० सं० १९३३
आषाढ़ शुक्ला पूर्णिमा

मुनि दीक्षा
वि० सं० १९८०
आश्विन शुक्ला ११
आचार्य श्री शान्तिसागरजी
महाराज से

स्वर्गवास
खानिया (जयपुर)
वि० सं० २०१४
आश्विन कृष्णा
अमावस्या

प्रस्तावना

विशालग्रहलोकस्य भूलोकस्य तथैव च ।
नित्यानां जिनधाम्नांच वर्णनं कृतमत्र सत् ॥
माता ज्ञानवती श्लाघ्या माता जिनमतिस्तथा ।
उभयोपुंण्यकर्मेदं धन्यवादोचितं सदा ॥

प्रस्तुत पुस्तिका अपने नाम से ही अर्थ की सार्थकता दिख लाती हुई दृष्टिगत होती है ग्रन्थकर्ता ने ज्योतिर्लोक नाम से इसका नामकरण किया है किन्तु इसमें न केवल 'ज्योतिर्लोक' का ही वर्णन है अपितु मध्यलोक के द्वीप, समुद्रों, नदी, पहाड़ों एवं क्षेत्र विभागों का भी वर्णन है और ये ही नहीं इसमें उन अकृत्रिम चैत्यालयों का भी वर्णन है जो कि मध्य लोक में ४५८ की संख्या में सदा शाश्वत विद्यमान हैं।

आधुनिक युग में चन्द्र लोक यात्रा का डिंडिम घोष चतुर्दिक सुनाई पड़ता है। वैज्ञानिकों ने वहां जाकर वहां के वायु मण्डल का, वहांकी मिट्टी का और वहां पर होने वाली जलवायु का भी अध्ययन किया है। यह भी निश्चित हो चुका है कि चन्द्र लोक में मानव का जाना संभव है और कतिपय सामग्री के सद्भाव में मानव वहां जीवित भी रह सकता है।

किन्तु जैनाचार्यो ने इस धारणा को सही रूप नहीं दिया है। उनका कहना है कि चाहे आधुनिक वैज्ञानिक अपने आप की चन्द्र लोक यात्रा सफल समझ लें किन्तु अभी वे असली चन्द्रमा पर नहीं पहुंच पाये हैं। आकाश में अनेकों ग्रह नक्षत्र ही नहीं इसी प्रकार के अन्य भ्रमणशील पुद्गल स्कंध भी शास्त्रों में बतलाये गये हैं। हो सकता है आधुनिक वैज्ञानिक भी ऐसे ही किसी पुदगल स्कंध पर पहुंच गये हों। जैनवाङ्मय के अनुसार उनका चन्द्रमा तक पहुंचना संभव नहीं है।

पुस्तक निर्माता ने इसी बात को दिखाने के लिये इस 'ज्योति लोक' नाम की पुस्तक का सृजन किया है। सौर मण्डल में कितने ग्रह, नक्षत्र, सूर्य, चन्द्र और तारे हैं उनकी संख्या मय ऊंचाई व विस्तार के आधुनिक माप के माध्यम से दी है। पाठक उसको जान कर अपना भ्रम मिटा सकते हैं। लेखक स्वयं प्रत्यक्ष द्रष्टा नही है किन्तु आगम चक्षु से वह जितना देख सका है उतना देखा है, इसी के आधार पर अनेकों ग्रन्थों का मंथन कर सारभूत तत्व निकालने का प्रयत्न भी कर सका है। हमें लेखक के श्रम की सराहना करनी चाहिये।

जिन भगवान सर्वज्ञ होते हैं अन्यथावादी नहीं होते, अतः उनके द्वारा कथित तत्व भी अन्यथा नही हो सकते और यह बात सत्य भी है कि जो जो वीतरागी सर्वज्ञ और हितोपदेशी होते हैं वे ऐसे ही होते हैं। अस्तु हमें लेखक की मान्यता का आदर करते हुए उसकी रचना का स्वागत करना चाहिये।

ग्रन्थकार ने स्वयं अपना कुछ न लिखकर पूर्वाचार्यों का ही सहारा लिया है। त्रिलोकसार, तिलोयपण्णत्ति, लोक विभाग, राजवार्तिक, श्लोकवार्तिक आदि ग्रन्थ ही इस पुस्तक की आधार शिला है।

जिनागम में श्रद्धा रखने वाले भव्य पुरुष अपने उपयोग की स्थिरता करने वाली और संस्थान विचार धर्म ध्यान में कार्यकारी होने वाली इस पुस्तक को रुचि से पढ़ेंगे और अन्य पाठकों को भी धर्म लाभ लेने में सहयोग प्रदान करेंगे।

इस पुस्तक में विशेषतः तीन विषय रखे गये हैं। १. ज्योतिर्लोक, २. भूलोक और ३. अकृत्रिम चैत्यालय।

१. ज्योतिर्लोक—इसमें पृथ्वी तल से ७९० योजन से लेकर ९०० योजन तक की ऊंचाई अर्थात् ११० योजन में स्थित ज्योतिषी देवों के विमानों को बतलाया है इन विमानों से सूर्य, चन्द्रमा, ग्रह, नक्षत्र और तारे मय अपने परिवारों के ध्रुवों को छोड़कर अढ़ाई द्वीप में तो सुमेरु पर्वत के चारों ओर परिभ्रमण करते हुये दिखाये गये हैं और इसके बाहर वाले अवस्थित दिखाये गये हैं। पुस्तक में इन्हीं विमानों की स्थित ऊंचाई और विस्तार का ठीक प्रमाण ग्रन्थान्तरों से देख शोध कर सही लिखा है। सूर्य और चन्द्र विमानों में जिन चैत्यालयों का स्वरूप भी यथावत संक्षिप्त रूप से बताया गया है। किस देव की कितनी स्थिति है इसे भी पुस्तक में खोला गया है और किस-किस प्रकार उनका भ्रमण है उस पर भी

पूर्ण प्रकाश डाला गया है। सूर्य एवं चन्द्रमा जिन १८४ वीथियों में होकर गमन करते है उनका प्रमाण शास्त्रोक्त विधि से सही निकाल कर लिखा गया है। जम्बूद्वीप में होने वाले दो सूर्य और दो चन्द्रमा किस प्रकार सुमेरु के चारों ओर परिभ्रमण करते हैं, उनकी गतियों का माप आधुनिक मान्य माप के आधार पर सही निकाला गया है। रात दिन का होना, उनका बड़ा छोटा होना, ऋतुओं का होना, ग्रहण का होना, सूर्य के उत्तरायण व दक्षिणायन का होना इत्यादि सभी खगोल सम्बन्धी तत्वों का संक्षिप्त दिग्दर्शन कराया है।

२. **भूलोक**— इस प्रकरण में पुस्तक निर्माता ने जम्बूद्वीप आदि द्वीपों और लवण समुद्रादि समुद्रों का संक्षिप्त परिचय दिया है इनमें तेरह द्वीप तक के द्वीपों और समुद्रों पर ही विशेष प्रकाश डाला है क्योंकि इन्ही तेरह द्वीपों तक अकृत्रिम चैत्यालय पाये जाते है। अढाई द्वीप के द्वीप और समुद्रों का विशेष विवरण दिया गया है। कितनी भोग भूमियां और कितनी कर्म भूमियां अढाई द्वीप में हैं उनका संक्षिप्त विवरण और इन क्षेत्रों में होने वाली गंगादिक नदियों का और इनके परिमाण आदि का वर्णन भी पुस्तक में भली प्रकार दिया है।

३. **अकृत्रिम चैत्यालय** पुस्तक में अकृत्रिम चैत्यालयों का स्वरूप भी दिखलाया है। जम्बूद्वीप में ७८ और कुल मध्य लोक में ४५८ चैत्यालय कहां-कहां है, इनको पृथक-पृथक बतला कर

चैत्यालयों तथा प्रतिमाओं का स्वरूप भी संक्षिप्त रूप से समझाया गया है।

इस प्रकार पुस्तक को आद्योपान्त देखने से पता चलता है कि लेखक का उपक्रम सराहनीय एवं प्रयोजन भूत है हमें जिनेन्द्र के वचनों पर विश्वास करके आगम प्रमाण को विशेष महत्व देना चाहिये क्योंकि इस युग में प्रत्यक्ष दृष्टा सर्वज्ञ का तो अभाव है अत: उनके अभाव में उनकी वाणी को ही प्रमाण मानकर उसमें आस्था रखनी चाहिये।

इन शब्दों के साथ मैं पुस्तक निर्माता के ज्ञान विज्ञान एवं परिश्रम की भूरि-भूरि प्रशंसा करता हूं और पूज्या ज्ञानमती माताजी एवं जिनमतीजी माताजी के प्रति विशेषश्रद्धा रखता हुआ इस पुस्तक की प्रस्तावना लिखकर अपना अहो भाग्य समझता हूं।

गुलाबचन्द छाबड़ा
जैनदर्शनाचार्य
अध्यक्ष
श्री दि० जैन संस्कृत कालेज,
जयपुर

जयपुर
१८ दिसम्बर, १९६९



प्रथम पंक्ति-बायें से दायें — श्री छोटेलालजी (पिताजी), आर्यिका श्री ज्ञानमतीजी, ब्र. [illegible], आर्यिका श्री अभयमतीजी, श्रीमती मोहिनी देवी (माताजी)।

द्वितीय पंक्ति-बायें से दायें (खड़े हुए) — श्री कुमुदनी देवी, कु. मालती देवी (बहनें), श्री कैलाशचन्दजी (भाई), जम्बूकुमार, श्रीमती चन्दा देवी (भावज)।

प्रकाशक का संक्षिप्त परिचय

प्रस्तुत पुस्तक के प्रकाशक गोयलगोत्रीय श्रेष्ठी श्री छोटेलालजी अग्रवाल (संघस्थ विदुषी आर्यिका पू० श्री १०५ ज्ञानमती माताजी के पिताजी) हैं। आप बहुत ही धार्मिकमना व्यक्ति हैं। आप उत्तरप्रदेश के प्रख्यात शहर लखनऊ के निकट बाराबंकी जिले के टिकैत नगर के निवासी हैं। आपकी उम्र लगभग ६१ वर्ष की है। आपकी सुयोग्य धर्मपत्नी श्री मोहनीदेवी भी बहुत ही धर्म परायणा हैं। अत्यन्त दृढ़ता पूर्वक ५ प्रतिमा के व्रतों का पालन करती हुई प्रतिदिन देवगुरु शास्त्र की भक्ति में रत रहती हैं। युगल दम्पत्ति ने कई तीर्थ यात्राएं की हैं। समय २ पर आपके वहां साधुओं का समागम भी बना रहता है जिससे आहार दानादि देकर सातिशय पुण्यबंध करते हैं। वर्ष दो वर्ष में संघ दर्शनार्थ भी पधारते रहते हैं।

आपके ४ पुत्र एवं ९ पुत्रियां हैं जिनके नाम क्रमशः इस प्रकार हैं :—(१) सुश्री मैनादेवी, (२) शांतिदेवी, (३) श्री कैलाश चन्दजी, (४) श्रीमती देवी, (५) मनोवतीदेवी, (६) प्रकाशचन्द जी (७) सुभाषचन्द जी, (८) कुमुदिनी देवी, (९) रवीन्द्र कुमार, (१०) मालती देवी, (११) कामिनीदेवी, (१२) माधुरी, (१३) त्रिशला।

योग्य माता पिता की योग्य संतानें होती हैं। आपके सभी पुत्र पुत्रियां सदाचारी एवं धर्मनिष्ठ हैं। कुल दीपक है। सर्व प्रथम संतान, 'कन्या रत्न' श्री मैनादेवी ने तो १८ वर्ष की अल्प आयु में ही संसार शरीर एवं भोगों से विरक्त होकर वैवाहिक बन्धनों में न जकड़ कर महान् उत्कृष्ट ब्रह्मचर्य व्रत धारण कर लिया एवं गृह परित्याग कर परम कल्याणकारी आर्यिका दीक्षा ग्रहण कर ली जो कि वर्तमान में आचार्य श्री धर्मसागरजी महाराज के संघ में सुविख्यात विदुषी पू० श्री ज्ञानमती माताजी के नाम से 'यथा नाम तथा गुण' को धारण करती हुई स्वपर कल्याण में अग्रसर एवं तत्पर हैं। पू० माताजी की विद्वत्ता से समस्त भारतवर्षीय जैन समाज सुपरिचित है।

पू० माताजी की ही छोटी बहन मनोवती देवी ने भी इन्हीं की सद्प्रेरणा से उदासीन होकरबाल ब्रह्मचर्य व्रत लेकर आप ही के मार्ग का अनुसरण करती हुई आर्यिका दीक्षा धारण कर, (अभयमतीजी के नाम से) संघ मे आपसे विद्याध्ययन करती हुई आत्मकल्याण में रत हैं। अभी अभी गत दशहरे पर आप ही की एक और छोटी बहन श्रीमालती देवी ने भी आप ही के सन्मार्ग दर्शन से वैवाहिक बंधन अस्वीकार करके अपने ही नगर के चातुर्मास के अन्तर्गत पू० मुनि श्री सुबलसागर जी महाराज से आजीवन ब्रह्मचर्यव्रत धारण कर लिया है। जो कि शीघ्र ही माताजी के पास आकर आत्यकल्याण के उत्तम मार्ग पर आरुढ़ होने वाली हैं ।

आपकी पुत्र बधुएं भी सुयोग्य, सुशिक्षित एवं आज्ञाकारिणी हैं। इस प्रकार सारा परिवार धार्मिक भावनाओं से ओत प्रोत है। आप कपड़े के व्यवसायी हैं आपके बड़े पुत्र श्री कैलाशचन्दजी सोने चांदी का व्यवसाय करते हैं, एवं छोटे पुत्र कपड़े का व्यापार करते हैं। कुछ वर्षों से आप दमा (श्वास) रोग से पीड़ित हैं अतः इन दिनों बहुत शिथिल हो गये हैं।

धन्य है ऐसे माता पिता को जिन्होंने रत्न रूप संतानों को जन्म दिया। हम श्री जिनेन्द्र देव से प्रार्थना करते हैं कि आपको शीघ्र ही स्वास्थ्य लाभ हो एवं सदैव धर्म भावना बनी रहे।

आपके ही समान आपके सुपुत्र श्री कैलाशचंदजी, प्रकाशचंदजी आदि सभी धार्मिक एवं उदारचित्त हैं। अभी जयपुर चातुर्मास में संघ दर्शनार्थश्री कैलाशचन्दजी पधारे थे तब उन्होंने वर्तमान वातावरण में जबकि मानव की चन्द्र यात्रा के बारे में तरह तरह की चर्चाएं हैं शास्त्र सम्मत सम्यक् स्पष्टीकरण करने हेतु एक पुस्तक प्रकाशन करने के लिए मुझे आग्रह किया।

विषय तो तैयार ही था क्योंकि माताजी ज्ञानमतीजी ने जैन भूगोल एवं ज्योतिर्लोक पर कुछ दिन पूर्व ही चातुर्मास के प्रारम्भ में लगकर १५ दिन के शिक्षण शिविर के अन्तर्गत प्रकाश डालते हुए मुख्य मुख्य विषय सभी अध्ययनार्थियों को लिखवाये भी थे

अत: वे नोट्स देखकर छपवाने के लिए कह गये और सारा कार्य भार देखरेख आदि का मुझ पर ही छोड़ गये।

इसी प्रकार, आप समस्त पारिवारिकजन हमेशा धार्मिक कार्यों में अग्रसर रहकर पुण्य संपादन करते हुए निःश्रेयससुख की प्राप्ति करें।

मोतीचन्द जैन सराफ
(आ० श्री धर्मसागरजी संघस्थ)

प० पू० आचार्य रत्न १०८ श्री देशभूषणजी महाराज



जैन ज्योतिर्लोक

विषयानुक्रमणिका

नोट:—सर्व प्रथम शुद्धि पत्र से पुस्तक में शुद्धि करलें पश्चात अध्ययन करलें ।

शुद्धि पत्र

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
४	१७	रत्नशकरा	रत्नशर्करा
५	५	हे	हैं
५	११	सूयं	सूर्य
७	१	वौड़ा	चौड़ा
८	५	जन्माभिपक	जन्माभिपेक
८	९	है	हैं
९	२०	यह	×
१२	१	ए	एवं
१३	१	क्र ा	क्रम
१३	१५	नदो	नदी
१४	७	निगिच्छ	निगिच्छ
१५	११	ख ड	खण्ड
१६	४	ग ा	गंगा
१७	१५	परंतु	परन्तु
२१	१	प्रकार	प्रकार

२१	१२	शोघ्रनर	शीघ्रतर
२२	१	किरणां	किरणों
२३	३	समह	समूह
२३	१२	बाज़	बाजू
२४	२	व ले	वाले
२४	१०	स र्श	स्पर्श
२४	२१	टेव	देव
२६	२	है	हैं
२६	१३	बहस्पनि	वृहस्पति
२८	१२	सू	सूर्य
२९	१	अभ्यंनर	अभ्यंतर
३२	६	मंरु	मेरु
३२	१९	तव	तब
३३	४	सू	सूर्य
३३	८	रहस्योद्घाटन	रहस्योद्घाटन
३३	८	—	में
३३	१०	सूर्यो	सूर्यों
३४	४	अ ाएव	अतएव
३४	१०	अर्थात मुहर्त	अर्थात १ मुहूर्त
३४	१०	महूत	मुहूर्त
३४	११	गनिगनि	गति
३४	११	यथा ÷४८	यथा २१२२०९३३$\frac{1}{3}$÷४८

३४	११	÷४८ =	÷४८ = ४४७६२३ $\frac{११}{१५}$
३६	१०	तम	तम
३८	३	चक्रवर्यी	चक्रवर्ती
४३	१६	दूसरा	दूसरी
४६	९	एर्वं	एवं
४७	१०	जंबूद्वीप	जंबूद्वीप
४७	११	द्वीण	द्वीप
४९	१७	नक्षघ	नक्षत्र
४९	१८	वींथी	वीथी
५०	१	सा ावीं	सातवीं
५०	२	आटवीं	आठवीं
५०	४	माग	मार्ग
५०	६	आद्रा	आर्द्रा
५०	६	संवार	संचार
५०	१४	पहलो	पहली
५१	८	ब्यास	व्यास
५२	१	बीव	बीच
५३	९	अन्नद्वीप	अन्तर्द्वीप
५३	१३	गोते	होते
५४	२०	आता	आती
५५	१	अभ्यतर	अन्तर
६१	७	राज	राजू

६१	७	पें	में
६४	३	मुषमा	सुषमा
६४	४	द्विनीयकाल	द्वितीय, तृतीय काल
६४	१५	घरों	घरों
६६	१५	घानीकी	घातकी
६७	७	ओर	और
३८	११	वन्द्र	चन्द्र
६८	१८	वलय	वलय
६८	२०	पुष्करार्ध	पुष्करार्ध
७०	६	स्वयभरमण	स्वयंभूरमण
७०	१२	सभो	सभी
७५	११	वूमनी	घूमती
७५	१२	हमशा	हमेशा
७७	५	म दा	सर्वदा
७९	१	इत	इस
८१	९	३०३ $\frac{२}{६}$ $\frac{७}{५}$	३९३ $\frac{२}{६}$ $\frac{७}{९}$
८२	१	स्वाम	स्वामी

समर्पण

जिन्होंने सिद्धत्व की उपलब्धि हेतु बालब्रह्मचर्य व्रत
अंगीकार कर (साटिका मात्र रखकर) समस्त
परिग्रह का परित्याग कर स्त्रियोचित
परमोत्कृष्ट आर्यिका पद
धारण किया है

जो भौतिक सुखों की वाञ्छा से सर्वथा परे है।

जो स्वपर कल्याण की उत्कट अभिलाषा से युक्त होकर चतुर्गति
रूप संसार से उन्मुक्त होने के लिए कटिबद्ध है।

"माता बालक का हित चाहती है।"

——तदनुसार——

जो विश्व के प्राणी मात्र का हित चाहते हुए मोक्ष मार्ग
में लगाने वाली सच्ची 'जगत माता' हैं।

ज्ञान अध्ययन एवं पठन पाठन में रत रहती हुई
आर्ष मार्ग पर प्रवृत्त एवं पोषक, वात्सल्य
स्वरूप, हितचिंतक विदुषीरत्न,

पूज्य श्री ज्ञानमती माताजी

के कर कमलों
में
सविनय सादर समर्पित—

मोतीचंद जैन सराफ

विदुषी आ[illegible] पू[illegible] श्री [illegible] ज्ञानमती माताजी

[illegible] वस्तु [illegible] मात [illegible]

तुभ्यमेव समर्पितम् ।

[illegible]



जन्म—	क्षुल्लिका दीक्षा	आर्यिका दीक्षा
टिकैतनगर [illegible] उ.प्र.	आ. श्री देशभूषणजी से	आ. श्री वीरसागरजी से
सन् 1934 वि. सं. [illegible]	श्री महावीरजी	माधोराजपुरा (राज.)
आसोज सु. [illegible]	वि.सं. 20[illegible] चैत्र कृ. [illegible]	सं. 2013 वैशाख कृ. [illegible]

॥ श्री महावीराय नमः ॥

मंगलाचरण

वेसदछप्पण्णंगुल-कदि-हिद-पदरस्स संखभागमिदे ।
जोइस-जिणिन्दगेहे, गणणातीदे णमंसामि ॥

अर्थ—दो सौ छप्पन अंगुल के वर्ग प्रमाण (पण्णट्ठी प्रमाण) प्रतरांगुल का जगत्प्रतर में भाग देने से जो लब्ध आवे उतने ज्योतिषी देव हैं। एवं संख्यातों ज्योतिर्वासी देव एक बिंब में रहते हैं। तथा एक एक बिंब में १-१ चैत्यालय है। इसलिये ज्योतिष्क देवों के प्रमाण में संख्यात का भाग देने से ज्योतिष्क देव संबंधि जिन चैत्यालयों का प्रमाण आता है, जो कि असंख्यात रूप ही है। उन ज्योतिष्क देव संबंधि असंख्यात जिन चैत्यालयों को और उनमें स्थित जिन प्रतिमाओं को मैं भक्तिपूर्वक नमस्कार करता हूं।

वर्तमान में वैज्ञानिकों की चन्द्रलोक यात्रा की चर्चा यत्र तत्र सर्वत्र ही हो रही है। जैन एवं अजैन, सभी बन्धुगण प्रायः इस चर्चा में बड़ी ही रुचि से भाग ले रहे हैं, जैन सिद्धांत के अनुसार यह यात्रा कहां तक वास्तविक है, इस पुस्तक को पढ़ने वाले आस्तिक्य बुद्धिधारी पाठकगण स्वयमेव ही निर्णय कर सकते हैं।

इस विषय पर समय समय पर पं० मक्खनलालजी शास्त्री एवं कांतिलाल शाह विद्वानों के लेख भी समाचारपत्रों में प्रकाशित हो चुके है।

इस विषय पर विशेष ऊहापोह न करके मै इस पुस्तक में केवल जैन सिद्धांत के अनुसार ज्योतिर्लोक का कुछ थोड़ासा वर्णन करता हूं।

आज प्राय: बहुत से जैन बन्धुओं को भी यह मालुम नहीं है कि जैन सिद्धांत में सूर्य, चन्द्र तारा आदि के विमानों का क्या प्रमाण है। एवं वो यहां से कितनी ऊंचाई पर हैं इत्यादि। क्योंकि त्रिलोकसार, तिलोयपण्णत्ति, लोकविभाग, श्लोकवार्तिक आदि ग्रन्थों के स्वाध्याय का प्राय: आजकल अभाव सा ही देखा जाता है।

इसीलिये कुछ जैन बन्धु भी भौतिक चकाचोंध में पड़कर वैज्ञानिकों के वाक्यों को ही वास्तविक मान लेते हैं, अथवा कोई कोई बन्धु संशय के झूले में ही झूलने लगते हैं।

वास्तव में, वैज्ञानिक लोग हमेशा ही किसी भी विषय के अन्वेषण एवं परीक्षण मे ही लगे रहे हैं। अन्तिम और वास्तविक निर्णय किसी भी विषय में देने में वे स्वयं ही असमर्थ है। वे स्वयं ही ऐसा लिखा करते है। देखिये–"वैज्ञानिकों का पृथ्वी के बारे में कथन—

"हमारा सौर मंडल एवं पृथ्वी की उत्पत्ति एक रहस्यमय

पहेली है। इस बारे में अभी तक निश्चित रूप से कुछ भी नहीं कहा जा सकता। अलग २ विद्वानों एवं वैज्ञानिकों ने अपनी बुद्धि एवं तर्क के अनुसार अलग २ मत प्रचलित किये हैं। उन सब मतों के अध्ययन के पश्चात् हम इसी निर्णय पर पहुंचते हैं' ब्रह्माण्ड की विशालता के समक्ष मानव एक क्षण भंगुर प्राणी है। उसका ज्ञान सीमित है। प्रकृति के रहस्यों को ज्ञात करने के लिये जो साधन उनके पास उपलब्ध है, वे सीमित हैं। अपूर्ण हैं। वैज्ञानिकों के विभिन्न सिद्धांतों को हम रहस्योद्घाटन की अटकलें मात्र कह सकते हैं। वास्तव में कुछ मान्यताओं के आधार पर आश्रित अनुमान ही हैं।"[१]

इस प्रकार हमेशा ही वैज्ञानिक लोग शोध मे ही लगे रहने से निश्चित उत्तर नहीं दे सकते हैं।

परन्तु अनादि निधन जैन सिद्धांत में परंपरागत सर्वज्ञ भगवान ने सम्पूर्ण जगत को केवलज्ञान रूपी दिव्य चक्षु से प्रत्यक्ष देखकर प्रत्येक वस्तु तत्व का वास्तविक वर्णन किया है।उनमें कुछ ऐसे भी विषय हैं, जो कि हम लोगों की बुद्धि एवं जानकारी से परे हैं। उसके लिये—

सूक्ष्मं जिनोदितं तत्त्वं, हेतुभिर्नैव हन्यते।
आज्ञासिद्धं तु तद्ग्राह्यं, नान्यथावादिनो जिनाः॥

---

१. सामान्य शिक्षा पुस्तक बोर्ड ए० बोर्ड की १९६७ मे छपी।

अर्थ—जिनेन्द्र भगवान के द्वारा कहा गया कोई कोई तत्त्व अत्यन्त सूक्ष्म है। किसी भी हेतु के द्वारा उसका खण्डन नहीं हो सकता है परन्तु—"जिनेन्द्र देव ने ऐसा कहा है" इतने मात्र से ही उस पर श्रद्धान करना चाहिये। क्योंकि—"जिनेन्द्र भगवान अन्यथावादी नहीं हैं" इस प्रकार की श्रद्धा से जिनका हृदय ओत-प्रोत है उन्हीं महानुभावों के लिये यह मेरा प्रयास है।

तथा जो आधुनिक जैन बन्धु या अजैन बन्धु अथवा वैज्ञानिक लोग जो कि मात्र जैन धर्म में "ज्योतिर्लोक के विषय में क्या मान्यता है" यह जानना चाहते हैं। उनके लिये ही मैं संक्षेप से यह पुस्तक लिख रहा हूं।

आज से लगभग १२०० वर्ष पहले भी आचार्य श्री विद्यानन्द स्वामी ने श्लोकवार्तिक ग्रन्थ में भू भ्रमण खण्डन एवं ज्योतिर्लोक के विषय पर अत्यधिक प्रकाश डाला था। जिसकी हिन्दी श्री पं० माणिकचन्द्रजी न्यायालंकार ने बहुत विस्तृत रूप में की है। ये ग्रन्थराज सोलापुर से प्रकाशित हो चुके है।

इन प्रकरणों को विशेष समझने के लिये श्री श्लोकवार्तिक में "**रत्नशर्करावालुकापंक**" इत्यादि सूत्र का अर्थ तथा "**मेरू-प्रदक्षिणा नित्यगतयो नृलोके**" सूत्र का अर्थ अवश्य देखें। तथा लोकविभाग का छठा अधिकार एवं तिलोयपण्णत्ति दूसरे भाग का सातवां अधिकार भी अवश्य देखना चाहिये।

विशेष—जैनागम में योजन के २ भेद हैं। (१) लघु योजन (२) महा योजन। ४ कोश का लघु योजन, एवं २००० कोश का महायोजन होता है। योजन एवं कोश आदि का विशेष विवरण इसी पुस्तक के अन्त में दिया है। यहां तो लोक प्रसिद्ध १ कोश में २ मील माने हैं उसी के अनुसार १ महायोजन में स्थूल रूप से ४००० मील मानकर सर्वत्र ४००० से ही गुणा करके मील की संख्या बताई गई है।

क्योंकि जम्बूद्वीप आदि द्वीप, समुद्र, ज्योतिर्वासी बिंब आदि, एवं पृथ्वीतल से उनकी ऊंचाई आदि तथा सूर्य, चन्द्र की गली एवं गमन आदि का प्रमाण आगम में महायोजन से माना है।

अब यहां सूर्य, चन्द्र आदि के स्थान, गमन आदि के क्षेत्र को बतलाने के लिये प्रारम्भ में कुछ अति संक्षिप्त भौगोलिक (द्वीप-समुद्र संबंधि) प्रकरण ले लिया है। अनंतर ज्योतिर्लोक का वर्णन किया जायगा।

आकाश के २ भेद हैं—(१) लोकाकाश (२) अलोकाकाश।

लोकाकाश के ३ भेद हैं—(१) अधो लोक (२) मध्यलोक (३) ऊर्ध्वलोक। अनन्त अलोकाकाश के बीचोंबीच मे यह पुरुषाकार तीन लोक हैं।

तीनलोक की ऊंचाई का प्रमाण

तीनलोक की ऊंचाई १४ राजू प्रमाण है। एवं मोटाई सर्वत्र ७ राजू हैं।

तीनलोक के जड़ भाग मे लोक की ऊंचाई का प्रमाण—

अधोलोक की ऊंचाई = ७ राजू। इसमें ७ सात नरक हैं। प्रथम नरक के ऊपर की पृथ्वी का नाम चित्रा पृथ्वी है।

ऊर्ध्व लोक की ऊंचाई = ७ राजू है। अर्थात् ७ राजू की ऊंचाई में स्वर्ग से लेकर सिद्धशिला पर्यन्त हैं।

नरक के तल भाग में चौड़ाई ७ राजू है।

घटते घटते चौड़ाई मध्य लोक में = १ राजू रह गई। मध्य-लोक से ऊपर बढ़ते-बढ़ते ब्रह्मलोक (५वें स्वर्ग) तक ५ राजू हो गई हैं।

५वें ब्रह्मलोक नामक स्वर्ग से ऊपर घटते घटते सिद्धशिला तक चौड़ाई	= १ राजू रह गई

तीनों लोकों के बीचों बीच में १ राजू चौड़ी तथा १४ राजू लम्बी त्रस नाली है। इस त्रस नाली में ही त्रसजीव पाये जाते है।

मध्यलोक का वर्णन

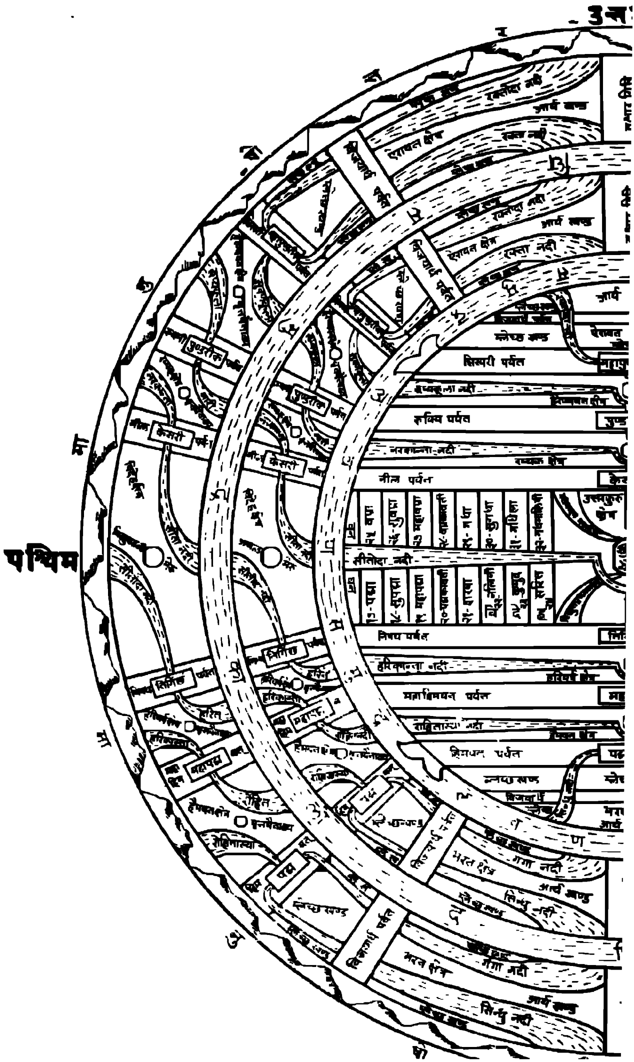
मध्य लोक १ राजू चौड़ा और १ १लाख ४० योजन ऊंचा है। यह चूड़ी के आकार है। इस मध्यलोक में असंख्यात द्वीप और असंख्यात समुद्र हैं।

जंबूद्वीप का वर्णन

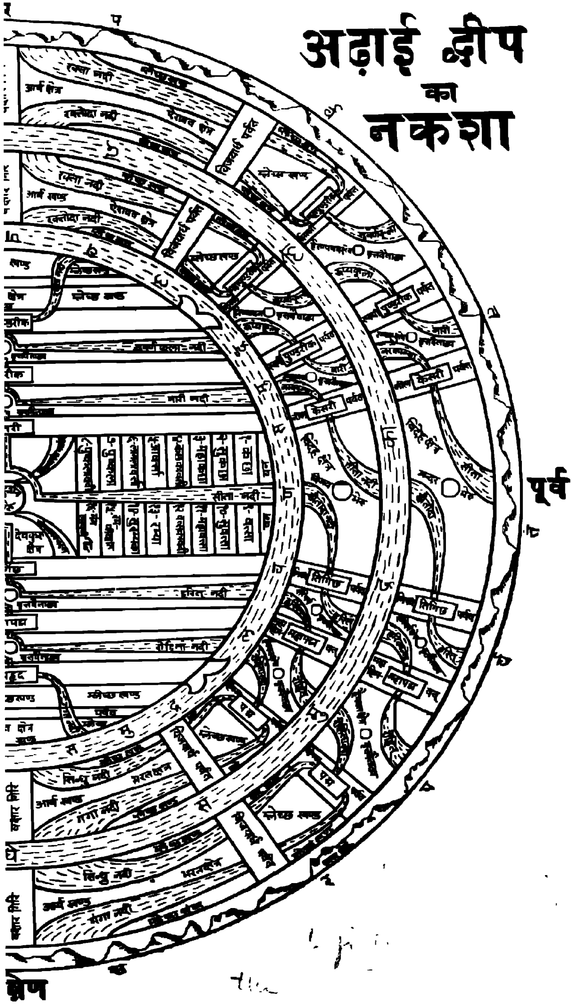
इस मध्यलोक में १ लाख योजन व्यास वाला अर्थात् ४००००००००० (४० करोड़) मील विस्तार वाला जंबूद्वीप स्थित है। जंबूद्वीप को घेरे हुये २ लाख योजन विस्तार (व्यास) वाला लवण समुद्र है। लवण समुद्र को घेरे हुये ४ लाख योजन व्यास वाला धातकी खण्ड द्वीप है। धातकी खण्ड को घेरे हुये ८ लाख योजन व्यास वाला वलयाकार कालोदधि समुद्र है। उसके पश्चात् १६ लाख योजन व्यास वाला पुष्करवर द्वीप है। इसी तरह आगे-आगे के द्वीप तथा समुद्र क्रम से दूने-दूने प्रमाण वाले होते गये हैं।

---

१. असंख्यातों योजनों का १ राजू होता है। और १४ राजू ऊंचे लोक में ७ राजू में नरक एवं ७ राजू में स्वर्ग हैं। इन दोनों के मध्य में १ लाख ४० योजन ऊंचा सुमेरु पर्वत है। बस इसी सुमेरु प्रमाण ऊंचाई वाला मध्यलोक है, जो कि ऊर्ध्व लोक का कुछ भाग है और वह राजू में नाकुछ के समान है। अतएव ऊंचाई में उसका वर्णन नही आया।


पश्चिम
ऐरावत क्षेत्र
रक्तोदा नदी
आर्य खण्ड
रक्ता नदी
शिखरी पर्वत
रुक्मि पर्वत
नरकान्ता नदी
नील पर्वत
केसरी
पुण्डरीक
सीतोदा नदी
निषध पर्वत
तिगिंछ
हरिकान्ता नदी
महाहिमवन पर्वत
महापद्म
हिमवन पर्वत
पद्म
म्लेच्छ खण्ड
विजयार्ध पर्वत
भरत क्षेत्र
गंगा नदी
सिन्धु नदी

अढ़ाई द्वीप का नकशा



आर्य क्षेत्र
ऐरावत क्षेत्र
आर्य खण्ड
म्लेच्छ खण्ड
विजयार्द्ध पर्वत
पुण्डरीक पर्वत
केसरी पर्वत
सीता नदी
तिगिंछ पर्वत
महापद्म
सिन्धु नदी
गंगा नदी
भरतक्षेत्र
पूर्व

मध्यलोक का वर्णन

मध्य लोक १ राजू चौड़ा और १ [1] लाख ४० योजन ऊंचा है। यह चूड़ी के आकार है। इस मध्यलोक में असंख्यात द्वीप और असंख्यात समुद्र हैं।

जंबूद्वीप का वर्णन

इस मध्यलोक में १ लाख योजन व्यास वाला अर्थात् ४०००००००० (४० करोड) मील विस्तार वाला जंबूद्वीप स्थित है। जंबूद्वीप को घेरे हुये २ लाख योजन विस्तार (व्यास) वाला लवण समुद्र है। लवण समुद्र को घेरे हुये ४ लाख योजन व्यास वाला धातकी खण्ड द्वीप है। धातकी खण्ड को घेरे हुये ८ लाख योजन व्यास वाला वलयाकार कालोदधि समुद्र है। उसके पश्चात् १६ लाख योजन व्यास वाला पुष्करवर द्वीप है। इसी तरह आगे-आगे के द्वीप तथा समुद्र क्रम से दूने-दूने प्रमाण वाले होते गये हैं।

---

१. असंख्यातों योजनों का १ राजू होता है। और १४ राजू ऊंचे लोक में ७ राजू में नरक एवं ७ राजू में स्वर्ग हैं। इन दोनों के मध्य में १ लाख ४० योजन ऊंचा सुमेरू पर्वत है। बस इसी सुमेरू प्रमाण ऊंचाई वाला मध्यलोक है, जो कि ऊर्ध्व लोक का कुछ भाग है और वह राजू में नाकुछ के समान है। अतएव ऊंचाई में उसका वर्णन नहीं आया।

अंत के द्वीप और समुद्र का नाम स्वयंभूरमणद्वीप और स्वयंभूरमण समुद्र हैं। कालोदधि समुद्र के बाद द्वीप और समुद्र का नाम सदृशही है। अर्थात् जो द्वीप का नाम है वही समुद्र का नाम है। पांचवें समुद्र का नाम क्षीरोदधि समुद्र है। इस समुद्र का जल दूध के समान है। भगवान के जन्माभिषक के समय देवगण इसी समुद्र का जल लाकर भगवान का अभिषेक करते हैं।

आठवां नंदीश्वर नाम का द्वीप है। इसमें ५२ जिनचैत्यालय हैं। प्रत्येक दिशा में १३-१३ चैत्यालय हैं। देव गण वहां भक्ति से पूजन दर्शन आदि करके महान पुण्य संपादन करते रहते है।

जंबूद्वीप के मध्य में १ लाख योजन ऊंचा तथा १० हजार योजन विस्तार वाला [1]सुमेरू पर्वत है। इस जंबूद्वीप में ६ कुलाचल (पर्वत) एवं ७ क्षेत्र हैं। ६ कुलाचलों के नाम—(१) हिमवान् (२) महाहिमवान (३) निषध (४) नील (५) रुक्मि (६) शिखरी। ७ क्षेत्रों के नाम—(१) भरत (२) हैमवत (३) हरि (४) विदेह (५) रम्यक (६) हैरण्यवत (७) ऐरावत।

जंबूद्वीप के भरत आदि क्षेत्रों एवं पर्वतों का प्रमाण

भरत क्षेत्र का विस्तार जंबूद्वीप के विस्तार का १९० वां भाग है। अर्थात् $\frac{१०००००}{१९०}$ = ५२६ $\frac{६}{१९}$ योजन अर्थात् २१०५२६३ $\frac{३}{१९}$ मील

---

1. यह पर्वत विदेह क्षेत्र के बीच में है।

है। भरत क्षेत्र के आगे हिमवन पर्वत का विस्तार भरत क्षेत्र से दूना है। इस प्रकार आगे-आगे क्रम से पर्वतों से दूना क्षेत्रों का तथा क्षेत्रों से दूना पर्वतों का विस्तार दूना-दूना होता गया है। यह क्रम विदेह क्षेत्र तक ही जानना। विदेह क्षेत्र के आगे-आगे के पर्वतों और क्षेत्रों का विस्तार क्रम से आधा-आधा होता गया है। (विशेष रूप से देखिये चार्ट नं० १)

विजयार्ध पर्वत का वर्णन

भरत क्षेत्र के मध्य में विजयार्ध पर्वत है। यह विजयार्ध पर्वत ५० योजन (२००००० मील) चौडा है। और २५ योजन (१००००० मील) ऊंचा है। एवं लंबाई दोनों तरफ से लवण समुद्र को स्पर्श कर रही है। पर्वत के ऊपर दक्षिण और उत्तर दोनों तरफ इस धरातल से १० योजन ऊपर तथा १० योजन ही भीतर समतल में विद्याधरों की नगरियां हैं। जो कि दक्षिण में ५० एवं उत्तर में ६० हैं। उसमें १० योजन और ऊपर एवं अंदर जाकर समतल में आभियोग्य जाति के देवों के भवन हैं। उससे ऊपर अवशिष्ट ५ योजन जाकर समतल में ९ कूट हैं। इन कूटों में सिद्धायतन नामक १ कूट में जिन चैत्यालय एवं ८ कूटों में व्यंतरों के आवास स्थान हैं।

इस चैत्यालय की लंबाई = १ [1]कोस, चौड़ाई = ½ कोस, एवं ऊंचाई ¾ कोस की है यह यह चैत्यालय अकृत्रिम है।

---

१. यह चैत्यालय का प्रमाण सबसे जघन्य है।

जंबूद्वीप का स्पष्टी करण

चार्ट नं० १

	क्षेत्र तथा कुलाचलों के नाम	विस्तार योजन	विस्तार मील	पर्वतों की ऊंचाई योजन से	पर्वतों की ऊंचाई मील से	पर्वतों के वर्ण
क्षेत्र	भरतक्षेत्र	५२६ $\frac{६}{१९}$	२१०५२६३ $\frac{३}{१९}$	×	×	×
पर्वत	हिमवान	१०५२ $\frac{१२}{१९}$	४२१०५२६ $\frac{६}{१९}$	१००	४००००	स्वर्ण के सदृश
क्षेत्र	हैमवन	२१०५ $\frac{५}{१९}$	८४२१०५२ $\frac{१२}{१९}$	×	×	×
पर्वत	महाहिमवान	४२१० $\frac{१०}{१९}$	१६८४२१०५ $\frac{५}{१९}$	२००	८०००००	चांदी
क्षेत्र	हरि	८४२१ $\frac{१}{१९}$	३३६८४२१० $\frac{१०}{१९}$	×	×	×
पर्वत	निषध	१६८४२ $\frac{२}{१९}$	६७३६८४२१ $\frac{१}{१३}$	४००	१६०००००	तपायाहुआसोना
क्षेत्र	विदेह	३३६८४ $\frac{४}{१९}$	१३४७३६८४२ $\frac{२}{१९}$	×	×	×

पर्वत	नील	१६८४२ २/१९	६७३६८४२१ १/१९	४००	१६००००००	वैडूर्यमणि
क्षेत्र	रम्यक	८४२१ १/१९	३३६८४२१० १७/१९	×	×	×
पर्वत	रूक्मि	४२१० १०/१९	१६८४२१०५ ५/१९	२००	८००००००	रजत सदृश
क्षेत्र	हैरण्यवत	२१०५ ५/१९	८४२१०५२ १२/१९	×	×	×
पर्वत	शिखरी	१०५२ १२/१९	४२१०५२६ ६/१९	१००	४००००००	स्वर्ण सदृश
क्षेत्र	ऐरावत	५२६ ६/१९	२१०५२६३ ३/१९	×	×	×

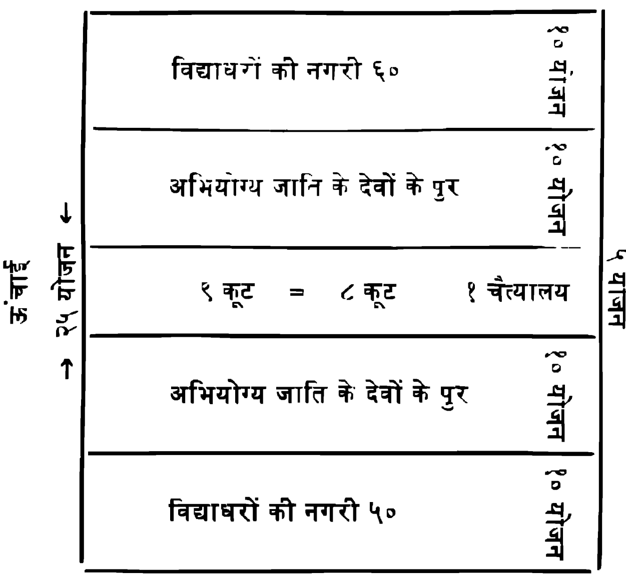
इस चैत्यालय में १०८ अकृत्रिम जिन प्रतिमायें हैं। एवं अष्ट मंगल द्रव्य, तोरण, माला कलश, ध्वज आदि महान विभूतियों से ये चैत्यालय विभूषित है।

यह विजयार्ध पर्वत रजत मई है। इसी प्रकार का विजयार्ध पर्वत ऐरावत क्षेत्र में भी इसी प्रमाण वाला है।

विजयार्ध पर्वत

चौड़ाई

→ ५० योजन ←



हिमवान पर्वत का वर्णन

हिमवन नामक पर्वत १०५२ १२/१९ योजन (४२१०५७६ ६/१९ मील) विस्तार वाला है। इस पर्वत पर पद्म नामक सरोवर है। वह सरोवर १००० योजन लंबा तथा ५०० यो० चौड़ा एवं १० यो० गहरा है। इसके आगे-आगे के पर्वतों पर क्रम से महापद्म, तिगिंच्छ केशरी, पुंडरीक, महापुंडरीक नाम के सरोवर हैं। पद्म सरोवर से दूनी लंबाई, चौड़ाई एवं गहराई महापद्म सरोवर की है। महापद्म से दूनी तिगिंच्छ की है। इसके आगे के सरोवरों की लम्बाई, चौड़ाई एवं गहराई का प्रमाण क्रम से आधा आधा होता गया है। इन सरोवरों में क्रमशः १–२–एवं ४ योजन के कमल हैं वे पृथ्वी कायिक हैं। उन कमलों पर श्री, ह्री, धृति, कीर्ति, बुद्धि एवं लक्ष्मी ये ६ देवियां अपने परिवार सहित निवास करती हैं। (देखिये चार्ट नं० २)

गंगा आदि नदियों के निकलने का क्रम

पद्म सरोवर के पूर्व तट से गंगा नदी एवं पश्चिम तट से सिंधु नदी निकलती हैं। गंगा नदी पूर्व समुद्र में एवं सिंधु नदी पश्चिम समुद्र में प्रवेश करती हैं। ये दोनों नदियां भरत क्षेत्र में बहती हैं। तथा इसी पद्म सरोवर के उत्तर तट से रोहितास्या नदी भी निकल कर हैमवत क्षेत्र में चली जाती है।

महा पद्म सरोवर से रोहित्, हरिकांता ये दो नदियां निकली

चार्ट नं० २

पद्म आदि सरोवर एवं देवियां

सरोवरों के नाम	सरोवरों की लम्बाई		चोडाई		गहराई		देवी
	योजन मे	मील से	योजन में	मील	यो०	मी०	
पद्म	१०००	४००००००	५००	२००००००	१०	४००००	श्रीदेवी
महापद्म	२०००	८००००००	१०००	४००००००	२०	८००००	ह्रीदेवी
तिगिच्छ	४०००	१६००००००	२०००	८००००००	४०	१६००००	धृतिदेवी
केसरी	४०००	१६००००००	२०००	८००००००	४०	१६००००	कीर्तिदेवी
पुंडरीक	२०००	८००००००	१०००	४००००००	२०	८००००	बुद्धिदेवी
महापुंडरीक	१०००	४००००००	५००	२००००००	१०	४००००	लक्ष्मीदेवी

हैं। तिगिंछ सरोवर से हरित्, सीतोदा, केसरी सरोवर से सीता और नरकांता, महा पुंडरीक सरोवर से नारी, रूप्यकूला, तथा पुंडरीक नामक अन्तिम सरोवर वे रक्ता, रक्तोदा एवं स्वर्णकूला ये तीन नदियां निकली हैं। इस प्रकार ६ पर्वतों पर स्थित ६ सरोवरों से १४ नदियां निकली हैं। प्रत्येक सरोवर से २–२ एवं पद्म तथा महा पुंडरीक सरोवर से ३–३ नदियां निकली हैं।

यह गंगा और सिंधु नदी विजयार्ध पर्वत को भेदती हुई आती हैं। अतः भरत क्षेत्र को ६ खण्डों में बांट देता है। विजयार्ध पर्वत के उस तरफ उतर में अर्थात् हिमवन और विजयार्ध के बीच ३ खण्ड हुये हैं। वे तीनों म्लेच्छ खण्ड कहलाते है। तथा विजयार्ध के इस तरफ के ३ खण्ड हैं, उनमें आजू-बाजू के दो म्लेछ खण्ड और बीच का आर्य खण्ड है। इन पांचों म्लेछ खण्डों के निवासी जाति से खान-पान से, आचरण से म्लेच्छ नहीं हैं, वे क्षेत्रज म्लेच्छ है।

गंगा नदी का वर्णन

पद्म सरोवर से गंगा नदी निकलकर पांच सौ योजन पूर्व की ओर जाती हुई गंगाकूट के २ कोश इधर से दक्षिण की ओर मुड़कर भरतक्षेत्र में २५ योजन पर्वत से (उसे छोड़कर) यहां पर सवाछः ($६\frac{1}{4}$) योजन विस्तीर्ण, आधा योजन मोटी और आधा योजन ही आयत वृषभाकार जिह्विका (नाली) है। इस नाली में प्रविष्ट

होकर वह गंगा नदी उत्तम श्री गृह के ऊपर गिरती हुई गोसींग के आकार होकर १० योजन विस्तार के साथ नीचे गिरी है।

गंगादेवी के श्रीगृह का वर्णन

जहां गंगा नदी गिरती है। वहां पर ६० योजन विस्तृत एवं १० योजन गहरा १ कुण्ड है। उसमें १० योजन ऊंचा वज्रमय १ पर्वत है। उस पर गंगादेवी का प्रासाद बना हुआ है। उस प्रासाद की छत पर एक अकृत्रिम जिन प्रतिमा केशों के जटाजूट से युक्त शोभायमान है। गगा नदी अपनी चचल एवं उन्नत तरंगों से संयुक्त होती हुई जलधारा से जिनेन्द्र देव का अभिषेक करते हुए के समान ही गिरती है, पुन: इस कुण्ड से दक्षिण की ओर जाकर आगे भूमि पर कुटिलता को प्राप्त होती हुई विजयार्ध की गुफा में ८ योजन विस्तृत होती हुई प्रवेश करती है। अन्त में १४ हजार नदियों से संयुक्त होकर पूर्व की ओर जाती हुई लवण समुद्र में प्रविष्ट हुई है। ये १४ हजार परिवार नदियां आर्य खण्ड में न बहकर म्लेच्छ खण्डों में ही बहती हैं। इस गंगा नदी के समान ही अन्य १३ नदियों का वर्णन समझना चाहिये। अन्तर केवल इतना ही है कि भरत और ऐरावत में ही विजयार्ध पर्वत के निमित्त से क्षेत्र के ६ खण्ड होते हैं, अन्यत्र नहीं होते हैं।

———

प० पू० १०८ आचार्य श्री शिवसागरजी महाराज



जन्म	क्षुल्लक दीक्षा—	मुनि दीक्षा—
अडगाव	श्री सिद्धवरकूट (म० प्र०)	नागौर (राज०)
जिला औरंगाबाद	वि० सं० २००० फाल्गुन शु. ७	सं० २००६ आषाढ़ शुक्ला
(महाराष्ट्र)	आचार्य श्री वीरसागरजी महाराज से	

ज्योतिर्लोक का वर्णन

ज्योतिष्क देवों के भेद

ज्योतिष्क देवों के ५ भेद हैं--(१) सूर्य (२) चन्द्रमा (३) ग्रह (४) नक्षत्र (५) तारा।

इनके विमान चमकीले होने से इन्हें ज्योतिष्क देव कहते हैं। ये सभी विमान अर्धगोलक के सदृश है। तथा मणिमय तोरणों से अलंकृत होते हुये निरन्तर देव-देवियों से एवं जिन मंदिरों से सुशोभित रहते हैं। तथा अपने को जो सूर्य चन्द्र तारे आदि दिखाई देते हैं यह उनके विमानों का नीचे वाला गोलाकार भाग दिखलाई देता है।

ये सभी ज्योतिर्वासी देव मेरू पर्वत को ११२१ योजन अर्थात् ४४८४००० मील छोड़कर नित्य ही प्रदक्षिणा के क्रम से भ्रमण करते हैं। इनमें चन्द्रमा, सूर्य ग्रह ५१०$\frac{४८}{६१}$ योजन प्रमाण गमन क्षेत्र में स्थित परिधियों के क्रम से पृथक् २ गमन करते हैं। परन्तु नक्षत्र और तारे अपनी २ एक परिधि रूप मार्ग में ही गमन करते हैं।

ज्योतिष्क देवों की पृथ्वीतल से ऊंचाई का क्रम

उपरोक्त ५ प्रकार के ज्योतिर्वासी देवों के विमान इस चित्रा पृथ्वी से ७९० योजन से प्रारंभ होकर ९०० योजन की ऊंचाई तक अर्थात् ११० योजन में स्थित हैं।

यथा—इस चित्रा पृथ्वी से ७९० यो० के ऊपर प्रथम ही ताराओं के विमान हैं। नंतर १० योजन जाकर अर्थात् पृथ्वीतल से ८०० योजन जाकर सूर्य के विमान हैं। तथा ८० यो० अर्थात् पृथ्वीतल से ८८० योजन (३५२०००० मी०) पर चन्द्रमा के विमान हैं। (पूरा विवरण चार्ट में देखिये।)

चार्ट न० ३

ज्यातिष्क दवा! का पृथ्वा तल स ऊ चाइ

विमानों के नाम	चित्रा पृथ्वी से ऊंचाई योजन में	ऊंचाई मील में
इस पृथ्वी से तारे	७९० योजन के ऊपर	३१६०००० मील पर
सूर्य	८००	३२०००००
चन्द्र	८८०	३५२००००
नक्षत्र	८८४	३५३६०००
बुध	८८८	३५५२०००
शुक्र	८९१	३५६४०००
गुरु	८९४	३५७६०००
मंगल	८९७	३५८८०००
शनि	९००	३६०००००

सूर्य, चन्द्र आदि के विमान का प्रमाण

सूर्य का विमान ४८/६१ योजन का है यदि १ योजन में ४००० मील के अनुसार गुणा कीजिये, तो ३१४७ ३३/६१ मील का होता है।

एवं चन्द्र का विमान ५६/६१ यो० अर्थात् ३६७२ ८/६१ मील का है।

शुक्र का विमान १ कोश का है। यह बड़ा कोश लघु कोश से ५०० गुणा है। अत: ५०० × २ मील से गुणा करने पर १००० मील का आता है। इसी प्रकार आगे--

ताराओं के विमानों का सबसे जघन्य प्रमाण १/४ कोश का है अर्थात् २२५ मील का है।

इन सभी विमानों की मोटाई (बाहल्य) अपने २ विमानों के विस्तार में आधी-आधी मानी है।

राहु के विमान चन्द्र विमान के नीचे एवं केतु के विमान सूर्य विमान के नीचे रहते हैं अर्थात् ४ प्रमाणांगुल (२००० उत्सेधांगुल) प्रमाण ऊपर चंद्र, सूर्य के विमान स्थित होकर गमन करते रहते हैं। ये राहु, केतु के विमान ६-६ महिने में पूर्णिमा एवं अमावस्या को क्रम से चन्द्र एवं सूर्य के विमानों को आच्छादित करते हैं। इसे ही ग्रहण कहते हैं।

चार्ट नं० ४

ज्योतिष्क देवों के बिम्बों का प्रमाण

बिंबों का प्रमाण	योजन से	मील से	किरणें
सूर्य	४८/६१	३१४७ ३३/६१	१२०००
चन्द्र	५६/६१	३६७२ ८/६१	१२०००
शुक्र	१ कोश	१०००	२५००
बुध	कुछ कम आधा कोश	कुछ कम ५०० मी०	मंद किरणें।
मंगल	कुछ कम आधा कोश	कुछ कम ५०० मी०	,,
शनि	कुछ कम आधा कोश	कुछ कम ५०० मी०	,,
गुरु	कुछ कम १ कोश	कुछ कम १००० मी०	,,
राहु	कुछ कम १ योजन	कुछ कम ४००० मी०	,,
केतु	कुछ कम १ योजन	कुम कम ४००० मी०	,,
तारे	१/४ कोश	१००० मी०	,,

ज्योतिष्क विमानों की किरणों का प्रमाण

सूर्य एवं चन्द्र की किरणें १२०००–१२००० हैं। शुक्र की

किरणें २५०० हैं। बाकी सभी ग्रह, नक्षत्र तारकाओं की मंद किरणें हैं।

इनके वाहन जाति के देव

इन सूर्य और चन्द्र के विमानों को आभियोग्य जाति के देव पूर्व में सिंह के आकार धरकर ४०००, दक्षिण में हाथी के आकार ४००० पश्चिम में बैल के आकार ४००० एवं उत्तर में घोड़े के आकार ४००० इस प्रकार १६००० हजार देव गमन खींचते रहते हैं।

इसी प्रकार ग्रहों के ८०००, नक्षत्रों के ४०००, ताराओं के २००० वाहन जाति के देव होते हैं।

गमन में चन्द्रमा सबसे मंद है। सूर्य उसकी अपेक्षा शीघ्र-गामी है। सूर्य से शीघ्रतर ग्रह, ग्रहों से शीघ्रतर नक्षत्र, एवं नक्षत्रों से भी शीघ्रतर गति वाले तारागण हैं।

शीत एवं उष्ण किरणों का कारण

पृथ्वी के परिणाम स्वरूप चमकीली धातु से सूर्य का विमान बना हुआ है, जो कि अकृत्रिम है।

इस सूर्य के बिंब में स्थित पृथ्वीकायिक जीवों के आतप नाम कर्म का उदय होने से उसकी किरणें चमकती हैं। तथा

उसके मूल में उष्णता न होकर सूर्य की किरणों में ही उष्णता होती है। इसलिये सूर्य की किरणें उष्ण हैं।

उसी प्रकार चन्द्रमा के बिंब में रहने वाले पृथ्वीकायिक जीवों के उद्योत नाम कर्म का उदय है जिसके निमित्त से मूल में तथा किरणों में सर्वत्र ही शीतलता पाई जाती है। इसी प्रकार ग्रह, नक्षत्र तारा आदि सभी के बिंब में रहने वाले पृथ्वी कायिक जीवों के उद्योत नाम कर्म का उदय पाया जाता है।

सूर्य चन्द्र के विमानों में स्थित जिनमंदिर का वर्णन

सभी ज्योतिर्देवों के विमानों में बीचोंबीच में एक-एक जिन मंदिर है। और चारों ओर ज्योतिर्वासी देवों के निवास स्थान बने हैं।

विशेष[1]—प्रत्येक विमान की तटवेदी चार गोपुरों से युक्त है। उसके बीच में उत्तम वेदी सहित राजांगण है। राजांगण के ठीक बीच में रत्नमय दिव्य कूट है उस कूट पर वेदी एवं चार तोरण द्वारों से युक्त जिन चैत्यालय (मंदिर) हैं। वे जिन मंदिर मोती व सुवर्ण की मालाओं से रमणीय और उत्तम वज्रमय

१. तिलोय पण्णत्ति के आधार से।

किवाड़ों से संयुक्त दिव्य चन्द्रोपकों से सुशोभित हैं। वे जिन भवन देदीप्यमान रत्नदीपकों से सहित अष्ट महामंगल द्रव्यों से परिपूर्ण वंदनमाला, चमर, क्षुद्र घंटिकाओं के समूह से शोभायमान हैं। उन जिन भवनों में स्थान-स्थान पर विचित्र रत्नों से निर्मित नाट्य सभा, अभिषेक सभा, एवं विविध प्रकार की क्रीड़ाशालायें बनी हुई हैं।

वे जिन भवन समुद्र के सदृश गंभीर शब्द करने वाले मर्दल, मृदंग, पटह आदि विविध प्रकार के दिव्य वादित्रों से नित्य शब्दायमान हैं। उन जिन भवनों में तीन छत्र, सिंहासन, भामंडल और चामरों से युक्त जिन प्रतिमायें विराजमान है।

उन जिनेन्द्र प्रासादों में श्री देवी, श्रुतदेवी यक्षी, एवं सर्वाण्ह व सनत्कुमार यक्षों की मूर्तियां भगवान के आजू-बाजू में शोभायमान होती हैं। सब देव गाढ़ भक्ति से जल, चंदन, तंदुल, पुष्प, उत्तमभक्ष्य, दीप, धूप और फलों से परिपूर्ण नित्य ही उनकी पूजा करते हैं।

चन्द्र के भवनों का वर्णन

इन जिन भवनों के चारों ओर समचतुष्कोण लंबे और नाना प्रकार के विन्यास से रमणीय चन्द्र के प्रासाद होते हैं। इनमें कितने ही प्रसाद मरकत वर्ण के कितने ही कुंद पुष्प, चन्द्र, हार

एवं बर्फ जैसे वर्ण वाले, कोई सुवर्ण सदृश वर्ण वाले व कोई मूंगा जैसे वर्ण वाले हैं।

इन भवनों में उपपाद मंदिर, स्नानगृह भूषणगृह, मैथुनशाला, क्रीड़ाशाला, मंत्रशाला आस्थान शालायें (सभाभवन) स्थित हैं। वे सब प्रासाद उत्तम परकोटों से सहित विचित्र गोपुरों से संयुक्त, मणिमय तोरणों से रमणीय विविध चित्रमयी दीवालों से युक्त विचित्र-विचित्र उपवन वापिकाओं से शोभायमान, सुवर्णमय विशाल खंभों से सहित और शयनासन आदि से परिपूर्ण हैं। वे दिव्य प्रासाद धूप के गंध से व्याप्त होते हुये अनुपम एवं शुद्ध रस, रूप, गंध, और स्पर्श से विविध प्रकार के सुखों को देते हैं।

तथा इन भवनों में कूटों से विभूषित और प्रकाशमान रत्न किरण पंक्ति से संयुक्त ७–८ आदि भूमियां (तल्ले) शोभायमान होती हैं।

इन चन्द्र भवनों में सिंहासन पर चन्द्र देव रहते है। एवं चन्द्र देव के ४ अग्रमहिषी होती हैं। चन्द्राभा, सुसीमा, प्रभंकरा, अर्चिमालिनी। प्रत्येक देवी के ४–४ हजार परिवार देवियां हैं। अग्रदेवियां ४–४ हजार प्रमाण विक्रिया से रूप बना सकती है। एक एक चन्द्र के परिवार देव प्रतीन्द्र (सूर्य) सामानिक तनुरक्ष, तीनों परिषद, सात अनीक प्रकीर्णक, आभियोग्य और किल्विषक, इस प्रकार ८ भेद हैं इनमें प्रतीन्द्र १, सामानिक आदि संख्यात प्रमाण देव होते हैं। ये देवगण भगवान के कल्याणकों में आया करते हैं।

तथा राजांगण के बाहर विविध प्रकार के उत्तम रत्नों से रचित और विचित्र विन्यास रूप विभूति से सहित परिवार देवों के प्रासाद होते हैं।

इन देवों की आयु का प्रमाण

चन्द्रमा की उत्कृष्ट आयु = १ पल्य और १ लाख वर्ष की है।

सूर्य की ,, ,, = १ पल्य १ हजार वर्ष की है।

शुक्र की ,, ,, = १ पल्य १०० वर्ष की है।

बृहस्पति की ,, ,, = १ पल्य की है।

बुध, मंगल आदि की ,, = आधा पल्य की है।

ताराओं की ,, = पाव पल्य की है।

तथा ज्योतिष्क देवांगनाओं की आयु अपने २ पति की आयु से आधे प्रमाण होती है।

सूर्य के बिम्ब का वर्णन

सूर्य के विमान ३१४९$\frac{3}{?}$ मील के हैं एवं इससे आधे मोटाई लिये हैं। तथा उपर्युक्त प्रकार ही अन्य वर्णन चन्द्र के विमानों के सदृश है। सूर्य की देवियों के नाम—द्युतिश्रुति, प्रभंकरा, सूर्य-प्रभा, अर्चिमालिनी ये चार अग्रमहिषी हैं। इन एक-एक देवियों के ४—४ हजार परिवार देवियां हैं। एवं एक-एक अग्रमहिषी विक्रिया से ४—४ हजार प्रमाण रूप बना सकती है।

बुध आदि ग्रहों का वर्णन

बुध के विमान स्वर्णमय चमकीले हैं। शीतल एवं मंद किरणों से युक्त हैं। कुछ कम ५०० मील के विस्तार वाले हैं तथा उसके आधे मोटाई वाले हैं। पूर्वोक्त चन्द्र, सूर्य विमानों के सदृश ही इनके विमानों में भी जिन मन्दिर, वेदी, प्रासाद आदि रचनायें हैं। देवी एवं परिवार देव आदि तथा वैभव उनसे कम अर्थात् अपने २ अनुरूप है। २-२ हजार आभियोग्य जाति के देव इन विमानों को ढोते हैं।

शुक्र के विमान उत्तम चांदी से निर्मित २॥ हजार किरणों से युक्त है। विमान का विस्तार १००० मील का एवं बाहल्य (मोटाई) ५०० मील की है। अन्य सभी वर्णन पूर्वोक्त प्रकार ही है।

बृहस्पति के विमान स्फटिक मणि से निर्मित सुन्दर मंद किरणों से युक्त कुछ कम १००० मील विस्तृत एवं इससे आधे मोटाई वाले है। देवी एवं परिवार आदि का वर्णन अपने २ अनुरूप तथा बाकी मन्दिर, प्रासाद आदि का वर्णन पूर्वोक्त ही है।

मंगल के विमान पद्मराग मणि से निर्मित लाल वर्ण वाले है। मंद किरणों से युक्त, ५०० मील विस्तृत, २५० मील बाहल्य-युक्त है। अन्य वर्णन पूर्ववत् है।

शनि के विमान स्वर्णमय ५०० मील विस्तृत २५० मील मोटे है। अन्य वर्णन पूर्ववत् है।

नक्षत्रों के नगर विविध २ रत्नों से निर्मित रमणीय मंद किरणों से युक्त है। १००० मील विस्तृत ५०० मील मोटे हैं। ८-८ हजार वाहन जाति के देव इनके विमानों को ढोते हैं। शेष वर्णन पूर्ववत् है।

तारागओं के विमान उत्तम २ रत्नों से निर्मित मंद २ किरणों से युक्त, १००० मील विस्तृत, ५०० मील मोटाई वाले है। तथा तारागओं के सबसे छोटे से छोटे विमान २२५ मील विस्तृत एवं इससे आधे बाहल्य वाले है।

सूर्य का गमन क्षेत्र

पहले यह बताया जा चुका है कि जंबू द्वीप १ लाख योजन (१०००००×४०००=४०००००००० मील) व्यास वाला है एवं वलयाकार (गोलाकार) है।

सूर्य का गमन क्षेत्र पृथ्वीतल से ८०० योजन (८००×४०००=३२००००० मील) ऊपर जाकर है।

वह इस जंबूद्वीप के भीतर १८० योजन एवं लवण समुद्र में ३३०$\frac{४८}{६१}$ योजन है, अर्थात् समस्त गमन क्षेत्र ५१०$\frac{४८}{६१}$ योजन या २०४३१४७ $\frac{१३}{६१}$ मील है।

इतने प्रमाण गमन क्षेत्र में १८४ गलियां हैं। इन गलियों में सूर्य क्रमशः एक-एक गली में संचार करते हैं। इस प्रकार जंबूद्वीप में दो सूर्य हैं तथा दो चन्द्रमा हैं।

इस ५१०$\frac{४८}{६१}$ योजन के गमन क्षेत्र में सूर्य बिम्ब की १-१ गली $\frac{४८}{६१}$ योजन प्रमाण वाली है। एवं एक गली से दूसरी गली का अन्तराल २-२ योजन का है।

अतः १८४ गलियों का प्रमाण $\frac{४८}{६१}$ × १८४ = १४४$\frac{४८}{६१}$ हुआ। इस प्रमाण को ५१०$\frac{४८}{६१}$ योजन गमन क्षेत्र में घटाने से ५१०$\frac{४८}{६१}$— १४४$\frac{४८}{६१}$ = ३६६ योजन हुआ।

३६६ योजन मे एक कम गलियों का अर्थात् गलियों के अन्तर १८३ है उसका भाग देने मे गलियो के अन्तर का प्रमाण ३६६ ÷ १८३ = २ योजन (८००० मील) का आता है। इस अन्तर में सूर्य को १ गली का प्रमाण $\frac{४८}{६१}$ योजन को मिलाने से सूर्य के प्रतिदिन के गमन क्षेत्र का प्रमाण २$\frac{४८}{६१}$ योजन (१११४७$\frac{३३}{६१}$ मील) का हो जाता है। (स्पष्टीकरण देखिये चार्ट नं० ५)

इन गलियों में एक-एक गली में दोनों सूर्य आमने-सामने रहते हुये १ दिन रात्रि (३० मुहूर्त) में एक गली के भ्रमण को पूरा करते है।

———

दोनों सूर्यों का आपस में अंतराल का प्रमाण

जब दोनों सूर्य अभ्यंतर गली में रहते हैं तब आमने-सामने रहने से एक सूर्य से दूसरे सूर्य का आपस में अंतर ९९६४० यो० (३९८५६०००० मी०) का रहता है। एवं प्रथम गली में स्थित सूर्य का मेरु से अंतर ४४८२० योजन (१७९२८०००० मी०) का रहता है।

अर्थात्—१ लाख योजन प्रमाण वाले जंबूद्वीप में से जंबूद्वीप संबंधी दोनों तरफ के सूर्य के गमन क्षेत्र को घटाने से १००००० — १८० × २ = ९९६४० यो० आता है।

तथा इसमें मेरु पर्वत का विस्तार घटाकर शेष को आधा करने से मेरु से प्रथम वीथी में स्थित सूर्य का अंतर निकलता है।

$$\frac{९९६४० — १००००}{२}$$ = ४४८२० यो० (१७९२८०००० मी०) का होता है।

सूर्य के अभ्यंतर गली की परिधि का प्रमाण

अभ्यंतर (प्रथम) गली की परिधि[1] का प्रमाण ३१५०८९ यो० (१२६०३५६००० मी०) है। इस परिधि का चक्कर (भ्रमण)

१. गोल वस्तु के गोल घेरे के आकार को परिधि कहते है। और वह व्यास से कुछ अधिक तिगुनी होती है।

२ सूर्य १ दिन-रात में लगाते हैं। अर्थात्–१ सूर्य भरत क्षेत्र में जब रहता है तब दूसरा ठीक सामने ऐरावत क्षेत्र में रहता है। तथा जब १ सूर्य पूर्व विदेह में रहता है, तब दूसरा पश्चिम विदेह मे रहता है। इस प्रकार उपर्युक्त अंतर से (९९६४० यो०) गमन करते हुये आधी परिधि को १ सूर्य एवं आधी को दूसरा सूर्य अर्थात् दोनों मिलकर ३० मुहूर्त (२४ घंटे) में १ परिधि को पूर्ण करते है।

पहली गली से दूसरी गली की परिधि का प्रमाण १७ ३८/६१ यो० (४३००००० मील) अधिक है। अर्थात् ३१५०८९ + १७ ३८/६१ = ३१५१०६ ३८/६१ योजन होता है। इसी प्रकार आगे-आगे की वीथियों में क्रमशः १७ ३८/६१ यो० अधिक २ होता गया है, यथा–३१५१०६ ३८/६१ + १७ ३८/६१ यो० = ३१५१२४ १५/६१ यो० प्रमाण तीसरी गली की परिधि है। इसी प्रकार बढ़ते २ मध्य की ९२वी गली की परिधि का प्रमाण–३१६७०२ यो० (१२६६८०८००० मी०) है। तथैव आगे वृद्धिगत होते हुये अंतिम बाह्य गली की परिधि का प्रमाण—३१८३१४ यो० (१२७३२५६००० मी०) है।

दिन–रात्रि के विभाग का क्रम

प्रथम गली में सूर्य के रहने पर उस गली की परिधि ३१५०८९ के १० भाग कीजिये। एक–एक गली में २–२ सूर्य भ्रमण करते है। अत एक सूर्य के गमन संबंधि ५ भाग हुये

उस ५ भाग में से २ भागों में अंधकार (रात्रि) एवं ३ भागों में प्रकाश (दिन) होता है। यथा—३१५०८९ ÷ १० = ३१५०८$\frac{९}{१०}$ यो० दसवां भाग (१२६०३५६०० मी०) प्रमाण हुआ। एक सूर्य संबंधि ५ भाग परिधि का आधा ३१५०८९ ÷ २ = १५७५४४$\frac{१}{२}$ यो० है। उसमें दो भाग में अंधकार एवं ३ भाग में प्रकाश है।

इसी प्रकार से क्रमशः आगे-आगे की वीथियों में प्रकाश घटने से एवं रात्रि बढ़ने से मध्य की गली में दोनों ही (दिन रात्रि) २॥—२॥ भाग में समान रूप से हो जाते हैं। पुनः आगे-आगे की गलियों में प्रकाश घटते-घटते तथा अंधकार बढ़ते-बढ़ते अंतिम बाह्य गली में सूर्य के पहुंचने पर ३ भागों में रात्रि एवं २ भागों में दिन हो जाता है। अर्थात् प्रथम गली में सूर्य के रहने से दिन बड़ा एवं अंतिम गली में रहने से छोटा होता है।

इस प्रकार सूर्य के गमन के अनुसार ही यहां भरत क्षेत्र में, ऐरावत, और पूर्व, पश्चिम विदेह क्षेत्रों में दिन रात्रि का विभाग होता रहता है।

छोटे–बड़े दिन होने का विशेष स्पष्टीकरण

श्रावण मास में सूर्य पहली गली में रहता है। उस समय दिन १८ मुहूर्त[1] का (१४ घंटे २४ मिनट का) एवं रात्रि १२ मुहूर्त

१. ४८ मिनट का १ मुहूर्त होता है अतः १८ मु० को ४८ मिनट का भाग देकर ६० मिनट से गुणा करने पर—१८ × ४८ = ८६४ मिनट ८६४ ÷ ६० = १४$\frac{२४}{६०}$ अर्थात् १४ घंटे २४ मिनट होते हैं।

(९ घंटे ३६ मिनट) की होती है।

पुनः दिन घटने का क्रम--

जब सूर्य प्रथम गली का परिभ्रमण पूर्ण करके २ य प्रमाण अंतराल के मार्ग को उल्लंघन कर दूसरी गली में जाता तब दूसरे दिन दूसरी गली में जाने पर परिधि का प्रमाण जाने से एवं मेरु से सूर्य का अन्तराल बढ़ जाने से दो मुहूर्त ६१वां भाग (१$\frac{३५}{६१}$ मिनट) दिन घट जाता है, एवं रात्रि बढ़ ज है। इसी तरह प्रतिदिन दो मुहूर्त के ६१वें भाग प्रमाण घटते-घ मध्यम गली में सूर्य के पहुंचने पर १५ मुहूर्त (१२ घंटे) का f एवं १५ मुहूर्त की रात्रि हो जाती है।

तथैव प्रतिदिन २ मु० के ६१वें भाग घटने २ अंतिम ग में पहुंचने पर १२ मुहूर्त (९ घंटे ३६ मिनट) का दिन एवं १८ मुहू (१४ घंटे २४ मिनट) की रात्रि हो जाती है।

जब सूर्य कर्कट राशि में आता है, तब अभ्यंतर गली १ भ्रमण करता है। और जब सूर्य मकर राशि में आता है तब बाह गली में भ्रमण करता है।

विशेष--श्रावण मास में सूर्य प्रथम गली में रहता है। तब १८ मु० का दिन एवं १२ मु० की रात्रि होती है। वैसाख एवं कार्तिक मास में सूर्य बीचों-बीच की गली में रहता है तब दिन एवं रात्रि १५-१५ मु० (१२ घंटे) के होते हैं।

प० पू० १०८ आचार्य श्री धर्मसागर जी महाराज



जन्म
गंभीरा (राज०)
वि० सं० [illegible]
पौष शुक्ला पूर्णिमा

क्षुल्लक दीक्षा
प० पू० १०८ श्री चन्द्रसागरजी म०
बालुज (महाराष्ट्र)
वि० सं० २०० [illegible]
चैत्र [illegible] ३

मुनि दीक्षा
आ० श्री वीरसागरजी म०
फुलेरा (राज०)
वि० सं० २००८
कार्तिक शुक्ला चतुर्दशी

तथैव माघ मास में सूर्य जब अन्तिम गली में रहता है। तब १२ मु० का दिन एवं १८ मु० की रात्रि होती है।

दक्षिणायन एवं उत्तरायण

श्रावण कृष्णा प्रतिपदा के दिन जब सूर्य अभ्यंतर मार्ग (गली) में रहता है, तब दक्षिणायन का प्रारंभ होता है। एवं जब १८४वीं अन्तिम गली में पहुंचता है तब उत्तरायण का प्रारम्भ होता है। अतएव ६ महिने मे दक्षिणायन एवं ६ महिने में उत्तरायण होता है।

जब दोनों ही सूर्य अन्तिम गली में पहुंचते हैं। तब दोनों सूर्यों का परस्पर में अन्तर अर्थात् एक सूर्य से दूसरे सूर्य के बीच का अन्तराल—

१००६६० यो० (४०२६४०००० मी०) का रहता है। अर्थात् जम्बूद्वीप १ लाख योजन है तथा लवण समुद्र में सूर्य का गमन क्षेत्र ३३० योजन है उसे दोनों तरफ का लेकर मिलाने पर १००००० + ३३० + ३३० = १००६६० योजन होता है। अंतिम गली मे अंतिम गली का यही अंतर है।

एक मुहूर्त में सूर्य के गमन का प्रमाण

जब सूर्य प्रथम गली में रहता है तब एक मुहूर्त में ५२५१$\frac{२९}{६०}$ योजन (२१००५९३३$\frac{१}{३}$) गमन करता है। अर्थात्—प्रथम गली

की परिधि का प्रमाण ३१५०८९ योजन है। उसमें ६० मुहूर्त का भाग देने से उपर्युक्त संख्या आती है क्योंकि २ सूर्य के द्वारा ३० मुहूर्त में १ परिधि पूर्ण होती है अत: १ परिधि के भ्रमण में कुल ६० मुहूर्त लगते हैं। अतएव ६० का भाग दिया जाता है।

उसी प्रकार जब सूर्य बाह्य गली में रहता है तब बाह्य परिधि मे ६० का भाग देने से—३१८३१४÷६० = ५३०५$\frac{१४}{६०}$ योजन (२१२२०९३३$\frac{१}{३}$) प्रमाण १ मुहूर्त में गमन करता है।

एक मिनट में सूर्य का गमन

एक मिनट में सूर्य की गति ४३७६२३$\frac{११}{१८}$ मील प्रमाण है। अर्थात् मुहूर्त की गति मे ४८ मिनट का भाग देने से १ मिनट की गतिगति का प्रमाण आता है। यथा ÷४८ =

अधिक दिन एवं मास का क्रम

जब सूर्य १ पथ से दूसरे पथ में प्रवेश करता है तब मध्य के अन्तराल २ योजन (८००० मी०) को पार करते हुये ही जाता है। अतएव इस निमित्त से १ दिन में १ मुहूर्त की वृद्धि होने से १ मास में ३० मुहूर्त (१ अहोरात्र) की वृद्धि होती है। अर्थात् यदि १ पथ के लांघने में दिन का इकसठवां भाग ($\frac{१}{६१}$) उपलब्ध होता है। तो १८४ पथों के १८३ अन्तरालों को लांघने में कितना समय लगेगा—$\frac{१}{६१}$ × १८३÷१ = ३ दिन तथा २ सूर्य संबंधि ६ दिन हुये।

इस प्रकार प्रतिदिन १ मुहूर्त (४८ मिनट) की वृद्धि होने से १ मास में १ दिन तथा १ वर्ष में १२ दिन की वृद्धि हुई। एवं इसी क्रम से २ वर्ष २४ दिन तथा ढाई वर्ष में ३० दिन (१ मास) की वृद्धि होती है। तथा ५ वर्ष रूप १ युग में २ मास अधिक हो जाते हैं।

सूर्य के ताप का चारों तरफ फैलने का क्रम

सूर्य का ताप मेरु पर्वत के मध्य भाग से लेकर लवण समुद्र के छठे भाग तक फैलता है। अर्थात्–लवण समुद्र का विस्तार २००००० योजन है उसमें छ: का भाग देकर १ लाख जंबूद्वीप का आधा ५०००० मिलाने से $(\frac{२०००००}{६} + ५००००) = ८३३३३\frac{१}{३}$ यो० (३३३३३३३३३$\frac{१}{३}$ मी०) होता है। सूर्य का प्रकाश नीचे की ओर चित्रा पृथ्वी की जड़ तक अर्थात् चित्रा पृथ्वी से जड़ एक हजार एवं ऊपर सूर्य बिम्ब ८०० यो० पर है। अत: १००० + ८०० = १८०० यो० (७२०००००० मी०) तक फैलता है और ऊपर की ओर १०० यो० (४०००००० मी०) तक फैलता है।

लवण समुद्र के छठे भाग की परिधि

लवण समुद्र के छठे भाग की परिधि का प्रमाण ५२७०४६ योजन (२१२८१८४००० मी०) है।

सूर्य के प्रथम गली में रहने पर ताप तम का प्रमाण

जब सूर्य अभ्यन्तर गली में रहता है उस समय लवण समुद्र के छठे भाग में ताप की परिधि १५८११४ $\frac{४}{५}$ यो० (६३३८५९२०० मी०) है। एवं तम की परिधि का प्रमाण १०५८०९ $\frac{१}{५}$ योजन ४२१६३६८०० मी०) है। तथा बाह्य गली में ताप की परिधि ९५४९४ $\frac{१}{५}$ योजन है और तम की परिधि ६३६६२ $\frac{४}{५}$ योजन प्रमाण है।

उसी प्रकार मध्यम गली में ताप की परिधि ९५०१० $\frac{३}{५}$ योजन एवं तम की परिधि ६३३४० $\frac{२}{५}$ योजन है।

मेरू पर्वत की परिधि मे ९४८६ $\frac{३}{५}$ योजन का प्रकाश और ६३२४ $\frac{२}{५}$ योजन का अन्धेरा होता है।

सूर्य के मध्यम गली में रहने पर ताप तम का प्रमाण

जब सूर्य मध्यम गली[१] में गमन करता है उस समय ताप और तम की परिधि समान होती है। अर्थात्—

१. तिलोयपण्णत्ति शास्त्र में प्रत्येक गली में सूर्य के स्थित रहने पर ताप तम का प्रमाण निकाला है। (विशेष वहां देखिये)

उस समय लवण समुद्र के छठे भाग में ताप और तम की परिधि १३१७६१$\frac{1}{2}$ योजन समान रहती है।

इसी समय बाह्य गली में ताप एवं तम की परिधि ७९५७८$\frac{1}{2}$ को समान होती है।

इसी समय अभ्यंतर गली में ताप तथा तम की परिधि ७८७७२$\frac{1}{4}$ योजन की होती है।

एवं मेरू की परिधि ताप तथा तम की ७९०५१$\frac{1}{2}$ योजन प्रमाण होती है।

सूर्य के अन्तिम गली में रहने पर ताप तम का प्रमाण

सूर्य जब अन्तिम गली में गमन करता है उस समय लवण समुद्र के छठे भाग में ताप की परिधि १०५४०९$\frac{1}{5}$ योजन की एवं तम की परिधि १५८११३$\frac{3}{5}$ योजन की होती है।

उसी समय मध्यम गली में ताप की परिधि ६३२४०$\frac{3}{5}$ योजन एवं तम की परिधि ९५०१०$\frac{3}{5}$ योजन की होती है।

उसी समय अभ्यन्तर गली में ताप की परिधि ६३०१७$\frac{4}{5}$ योजन एवं तम की परिधि ९४५२६$\frac{7}{10}$ योजन की होती है।

एवं उसी समय मेरू की परिधि में ताप ६३२४$\frac{3}{5}$ योजन और तम ९४८६$\frac{3}{5}$ योजन प्रमाण होता है।

चक्रवर्ती के द्वारा सूर्य के जिनबिंब का दर्शन

जब सूर्य पहली गली में आता है तब अयोध्या नगरी के भीतर अपने भवन के ऊपर स्थित चक्रवर्ती सूर्य विमान में स्थित जिन बिंब का दर्शन करते हैं। इस समय सूर्य अभ्यंतर गली की परिधि ३१५०८९ योजन को ६० मुहूर्त में पूरा करता है। इस गली में सूर्य निषध पर्वत पर उदित होता है वहां से उसे अयोध्या नगरी के ऊपर आने में ९ मुहूर्त लगते हैं। अब जब वह ३१५०८९ योजन प्रमाण उस वीथी को ६० मुहूर्त में पूर्ण करता है तब वह ९ मुहूर्त में कितने क्षेत्र को पूरा करेगा। इस प्रकार त्रैराशिक करने पर—$\frac{३१५०८९}{६०} \times ९ = ४७२६३\frac{७}{२०}$ योजन अर्थात् १८९०५३४००० मील होता है।

पक्ष-मास-वर्ष आदि का प्रमाण

जितने काल में एक परमाणु आकाश के १ प्रदेश को लांघता है। उतने काल को १ समय कहते हैं। ऐसे असंख्यात समयों की १ आवली होती है। अर्थात्—असंख्यात समयों की १ आवली

संख्यात आवलियों का १ उच्छ्वास
सात उच्छ्वासों का १ स्तोक
सात स्तोकों का १ लव
३८½ लवों की १ नाली[1]

1. नाली अर्थात् घटिका। २४ मिनट की १ घड़ी होती है उसे ही नाली या घटिका कहते है।

२ घटिका का १ मुहूर्त होता है ।

इसी प्रकार ३७७३ उच्छ्वासों का एक मुहूर्त होता है । एवं ३० मुहूर्त[२] का १ दिन-रात होता है । अथवा २४ घन्टे का १ दिन-रात होता है ।

१५ दिन का १ पक्ष
२ पक्ष का १ मास
२ मास की १ ऋतु
३ ऋतु की १ अयन
२ अयन का १ वर्ष
५ वर्षों का १ युग होता है ।

प्रति ५ वर्ष के पश्चात् सूर्य श्रावण कृष्णा १ को पहली गली में आता है ।

दक्षिणायन एवं उत्तरायन का क्रम

जब सूर्य श्रावण कृष्णा १ के दिन प्रथम गली में रहता है तब दक्षिणायन होता है । एवं उसी वर्ष माघ कृष्णा ७ को उत्तरायन होता है । तथैव दूसरी वर्ष—

श्रावण कृष्ण १३ को दक्षिणायन एवं माघ शुक्ला ४ को उत्तरायण होता है । तीसरी वर्ष—श्रावण शुक्ला १० को दक्षिणायन,

२. ४८ मिनट का १ मुहूर्त होता है इसलिये ३० मुहूर्त के २४ घन्टे होते है ।

माघकृष्णा १ को उत्तरायण। चौथी वर्ष—श्रावण कृष्णा ९ दक्षिणायन, माघ कृष्णा १३ को उत्तरायण। पांचवे वर्ष—श्र शुक्ला ४ को दक्षिणायन, माघ शुक्ला १० को उत्तरायण होता

पुनः छठे वर्ष मे उपरोक्त व्यवस्था प्रारम्भ हो जाती अर्थात्—पुनः श्रावण कृष्णा १ के दिन दक्षिणायन एवं माघ कृ ७ को उत्तरायण होता है। इस प्रकार ५ वर्ष में एक युग सम होता है और छठे वर्ष मे नया युग प्रारम्भ होता है। इस प्र प्रथम वीथी से दक्षिणायन एवं अन्तिम वीथी मे उत्तरा होता है।

सूर्य के १८४ गलियों के उदय स्थान

सूर्य के उदय निषध और नील पर्वत पर ६३ हरि और रम्य क्षेत्रों में २ तथा लवण समुद्र में ११९ है। ६३+२+११९=१ हैं। इस प्रकार १८४ उदय स्थान होते हैं।

चन्द्रमा का विमान, गमन क्षेत्र एवं गलियां

चन्द्र का विमान $\frac{56}{61}$ योजन (३६७२$\frac{8}{61}$ मील) का है। सू के समान चन्द्रमा का भी गमन क्षेत्र ५१०$\frac{48}{61}$ योजन है। इस गम क्षेत्र में चन्द्र की १५ गलियां है। इनमें वह प्रतिदिन क्रमशः एक एक गली में गमन करता है। चन्द्र बिंब के प्रमाण $\frac{56}{61}$ योजन व ही १–१ गली हैं अतः समस्त गमन क्षेत्र में चन्द्र बिंब प्रमाण १

प० पू० १०८ आचार्य रत्न श्री श्रुतसागरजी महाराज



जन्म -	क्षुल्लक दीक्षा –	मुनि दीक्षा
	आचार्य श्री वीरसागरजी महाराज से	
बीकानेर (राज०)	टोडारायसिंह (राज०)	खानिया (जयपुर)
वि० सं० १९६२	वि० सं० २०११	वि० सं० २०१४
फाल्गुण कृष्णा ३०	कार्तिक शुक्ला १३	भादव सुदी ३

गलियों को घटाने से एवं शेष में १ कम गलियों (१४) का भाग देने से चन्द्र गली से दूसरी चन्द्र गली के अन्तर का प्रमाण प्राप्त होता है। यथा—

$$५१०\frac{४८}{६१} - \frac{५६}{६१} \times १५ = ५१०\frac{४८}{६१} - १३\frac{४७}{६१} = ४९७\frac{१}{६१}$$

इसमें १४ का भाग देने से $४९७\frac{१}{६१} \div १४ = ३५\frac{२१४}{४२७}$ योजन ($१४२००४\frac{२९२}{४२७}$ मील) इतना प्रमाण एक चन्द्रगली से दूसरी चन्द्र गली का अन्तराल है।

इसी अन्तर में चन्द्र बिंब के प्रमाण को जोड़ देने से चन्द्र के प्रतिदिन के गमन क्षेत्र का प्रमाण आता है। यथा $३५\frac{२१४}{४२७} + \frac{५६}{६१} = ३६\frac{१७९}{४२७}$ योजन है। एवं $१४५६७६\frac{३४८}{४२७}$ मील होता है।

अर्थात्—प्रतिदिन दोनों ही चन्द्रमा १–१ गलियों में आमने-सामने रहते हुये १–१ गली का परिभ्रमण पूरा करते हैं।

चन्द्र को १ गली के पूरा करने का काल

अपनी गलियों में से किसी भी एक गली में संचार करते हुये चन्द्र को उस परिधि को पूरा करने में $६२\frac{२३}{२२१}$ मुहूर्त प्रमाण काल लगता है। अर्थात् एक चन्द्र कुछ कम २५ घन्टे में १ गली का भ्रमण करता है। सूर्य को १ गली के भ्रमण में २४ घन्टे एवं चन्द्र को १ गली के भ्रमण में कुछ कम २५ घन्टे लगते हैं।

चन्द्र का १ मुहूर्त में गमन क्षेत्र

चन्द्रमा की प्रथम वीथी ३१५०८९ योजन की है उसमें एक

गली को पूरा करने का काल ६२ $\frac{२३}{२२१}$ का भाग देने से १ मुहूर्त का गति का प्रमाण आता है। ३१५०८९ ÷ ६२ $\frac{२३}{२२१}$ = ५०७३ $\frac{७७४४}{१३७२५}$ योजन आता है। एवं ४००० से गुणा करके इसका मील बनाने पर—२०२९४२५६ $\frac{४९६}{५४९}$ मील होता है। अर्थात् एक मुहूर्त (४८ मिनट) में चन्द्रमा इतने मील गमन करता है।

१ मिनट में चन्द्रमा का गमन क्षेत्र

इस मुहूर्त प्रमाण गमन क्षेत्र के मील में ४८ मिनट का भाग देने से १ मिनट की गति का प्रमाण आ जाता है। यथा—२०२९४२५६ $\frac{४९६}{५४९}$ ÷ ४८ = ४२२७९७ $\frac{३१}{१६४७}$ मील होता है। अर्थात् चन्द्रमा १ मिनट में इतने मील गमन करता है।

द्वितीयादि गलियों में स्थित चन्द्र का गमन क्षेत्र

प्रथम गली में स्थित चन्द्र की १ मुहूर्त गति ५०७३ $\frac{७७४४}{१३७२५}$ योजन है। चन्द्र जब दूसरी गली में पहुंचता है तब इसी प्रमाण में (३ $\frac{५}{७}$) योजन और मिला देने से द्वितीय गली में स्थित चन्द्र की १ मुहूर्त की गति का प्रमाण होता है। इसी प्रकार आगे-आगे की १३ गलियों तक भी ३ $\frac{५}{७}$ योजन अधिक २ करने से मुहूर्त प्रमाण गति का प्रमाण आता है।

मध्यम गली मे चन्द्र के पहुचने पर १ मुहूर्त की गति का प्रमाण ५१०० योजन है।

एवं बाह्य गली में चन्द्र के पहुंचने पर १ मुहूर्त की गति का प्रमाण ५१२६ योजन (२०५०४००० मी०) होता है। विशेष—५१०$\frac{४८}{६१}$ यो० के क्षेत्र में ही सूर्य की १८४ गलियां हैं। एवं चन्द्र की १५ गलियां हैं। अतएव सूर्य की गलियों का अन्तराल दो-दो योजन का एवं चन्द्र की प्रत्येक गलियों का अन्तराल ३५$\frac{३०}{६१}$$\frac{४}{७}$ योजन का है।

एवं सूर्य १ गली को ६० मुहूर्त में पूरी करते हैं। परन्तु चन्द्र १ गली को ६२$\frac{२३}{२२१}$ मुहूर्त मे पूरा करते हैं।

कृष्ण पक्ष–शुक्ल पक्ष का क्रम

जब यहां मनुष्य लोक में चन्द्र बिंब पूर्ण दिखता है। उस दिवस का नाम पूर्णिमा है। राहु ग्रह चन्द्र विमान के नीचे गमन करता है और केतु ग्रह सूर्य विमान के नीचे गमन करता है। राहु और केतु के विमानों के ध्वजा दण्ड के ऊपर चार प्रमाणांगुल (२००० उत्सेधांगुल) प्रमाण ऊपर जाकर चन्द्रमा और सूर्य के विमान हैं। राहु और चन्द्रमा अपनी २ गलियों को लांघकर क्रम से जम्बूद्वीप की आग्नेय और वायव्य दिशा में अगली-अगली गली में प्रवेश करते हैं। अर्थात् पहली से दूसरी, दूसरी से तीसरी आदि गली में प्रवेश करते हैं।

पहली से दूसरी गली में प्रवेश करने पर चन्द्र मण्डल के १६ भागों में से १ भाग राहु के गमन विशेष से आच्छादित (ढका) होता हुआ दिखाई देता है।

इस प्रकार राहु प्रतिदिन एक-एक मार्ग में चन्द्रबिंब को १५ दिन तक एक-एक कलाओं को ढकता रहता है। इस प्रकार राहुबिंब के द्वारा चन्द्र की १–१ कला का आवरण करने पर जिस मार्ग में चन्द्र की १ ही कला दीखती है। वह अमावस्या का दिन होता है।

फिर वह राहु प्रतिपदा के दिन से प्रत्येक गली में १-१ कला को छोड़ते हुये पूर्णिमा को पन्द्रहों कलाओं को छोड़ देने से पूर्ण बिंब दीखने लगता है। उसे ही पूर्णिमा कहते हैं। इस प्रकार कृष्ण-पक्ष एवं शुक्ल पक्ष का विभाग हो जाता है।

चन्द्रग्रहण-सूर्यग्रहण क्रम

इस प्रकार ६ मास में पूर्णिमा के दिन चन्द्र विमान पूर्ण आच्छादित हो जाता है। उसे ही चन्द्रग्रहण कहते हैं। तथैव छह मास में सूर्य के विमान को अमावस्या के दिन केतु का विमान ढक देता है। उसे ही सूर्य ग्रहण कहते हैं।

विशेष—ग्रहण आदि के समय दीक्षा, विवाह आदि शुभ कार्य वर्जित माने हैं। तथा अन्य मतावलम्बियों द्वारा कथित सूतक पातक, स्नान, दान आदि केवल मिथ्यात्व ही है।

सूर्य चन्द्रादिकों का तीव्र-मन्द गमन

सबसे मन्द गमन चन्द्रमा का है। उससे शीघ्र गमन सूर्य क

है। उससे तेज गमन ग्रहों का, उससे तीव्र गमन नक्षत्रों का एवं सबसे तीव्र गमन ताराओं का है।

एक चन्द्र का परिवार

इन ज्योतिषी देवों में चन्द्रमा इन्द्र है तथा सूर्य प्रतीन्द्र है। अतः एक चन्द्र (इन्द्र) के १ सूर्य (प्रतीन्द्र), ८८ ग्रह, २८ नक्षत्र, ६६ हजार ९७५ कोड़ाकोडी तारे ये सब परिवार देव हैं।

कोड़ाकोड़ी का प्रमाण

१ करोड़ को १ करोड से गुणा करने पर कोडाकोड़ी संख्या आती है। १०००००००× १००००००० = १०००००००००००००००

१ तारे से दूसरे तारे का अन्तर

एक तारे से दूसरे तारे का जघन्य अन्तर १४२$\frac{५}{७}$ मील का है अर्थात् ($\frac{१}{७}$ महाकोश है इसका लघु कोश ५०० गुणा होने से $\frac{५००}{७}$ हुआ उसको मील करने से $\frac{५००}{७}$ × २ = १४२$\frac{५}{७}$ हुआ।)

मध्यम अन्तर—५० यो० (२०००० मी०) का है। एवं उत्कृष्ट अन्तर—१०० यो० (४००००० मी०) का है।

जंबूद्वीप संबंधि तारे

जंबूद्वीप में २ चन्द्र के परिवार तारे १३३ हजार ९५० कोड़ा-कोड़ी प्रमाण हैं। उनका जंबूद्वीप के ७ क्षेत्र एवं ६ पर्वतों में विभाग निम्न प्रकार है—

क्षेत्र एवं पर्वत	तारों की संख्या कोड़ाकोड़ी से
भरत क्षेत्र में	७०५ कोड़ाकोड़ी तारे
हिमवन पर्वत में	१४१० ,, ,,
हेमवन क्षेत्र में	२८२० ,, ,,
महा हिमवन पर्वत में	५६४० ,, ,,
हरि क्षेत्र में	११२८० ,, ,,
निषध पर्वत में	२२५६० ,, ,,
विदेह क्षेत्र में	४५१२० ,, ,,
नील पर्वत में	२२५६० ,, ,,
रम्यक क्षेत्र	११२८० ,, ,,
रुक्मि पर्वत में	५६४० ,, ,,

हैरण्यवत क्षेत्र में	२८२० ,, ,,
शिखरी पर्वत में	४११० ,, ,,
ऐरावत क्षेत्र में	७०५ कोड़ाकोड़ी तारे हैं

कुल जोड–१३३९५० कोड़ाकोड़ी है ।

इस प्रकार २ चन्द्र संबधि संपूर्ण ताराओं का कुल जोड़ १३३९५०००००००००००००००० प्रमाण है ।

ध्रुव ताराओं का प्रमाण

जो अपने स्थान पर ही रहते हैं। प्रदक्षिणा रूप मे परिभ्रमण नहीं करते है उन्हें ध्रुव तारे कहते है।

जंबूद्वीप में ३६, लवण समुद्र में १३९, धातकीखण्ड में १०१०, कालोदधि समुद्र में ४११२०, पुष्करार्ध द्वीप में ५३२३०, तारे हैं। ढाई द्वीप के आगे सभी ज्योतिष्क देव एवं तारे स्थिर ही है।

ढाई द्वीप एवं दो समुद्र संबंधि सूर्य चन्द्रादिकों का प्रमाण

द्वीप-समुद्र में—	चन्द्रमा	सूर्य
जंबूद्वीप में	२	२
लवण समुद्र	४	४
घात की खण्ड	१२	१२
कालोदधि समुद्र	४२	४२
पुष्करार्द्ध द्वीप	७२	७२

नोट—सर्वत्र ही १–१ चन्द्र के १–१ सूर्य प्रतीन्द्र, ८८–८८ ग्रह, २८ नक्षत्र, एवं ६६ हजार ९७५ कोडाकोड़ी तारे है। इतने प्रमाण परि देव समझना चाहिये।

इस ढाई द्वीप के आगे–आगे असंख्यात द्वीप एवं समुद्र प दूने–दूने चन्द्रमा एवं दूने–दूने सूर्य होते गये हैं।

मानुषोत्तर पर्वत के पूर्व के ही ज्योतिष्क देवों का भ्रमण

मानुषोत्तर पर्वत से इधर-इधर के ही ज्योतिर्वासी देव

हमेशा ही मेरू की प्रदक्षिणा देते हुये गमन करते रहते हैं। और इन्हीं के गमन के क्रम से दिन रात्रि पक्ष मास संवत्सर आदि का विभाग रूप व्यवहार काल जाना जाता है।

२८ नक्षत्रों के नाम

(१) कृत्तिका (२) रोहिणी (३) मृगशीर्षा (४) आर्द्रा
(५) पुनर्वसू (६) पुष्य (७) आश्लेषा (८) मघा
(९) पूर्वाफाल्गुनी (१०) उत्तराफाल्गुनी (११) हस्त (१२) चित्रा
(१३) स्वाति (१४) विशाखा (१५) अनुराधा (१६) ज्येष्ठा
(१७) मूल (१८) पूर्वाषाढ़ा (१९) उत्तराषाढ़ा (२०) अभिजित्
(२१) श्रवण (२२) धनिष्ठा (२३) शतभिषक (२४) पूर्वाभाद्रपदा
(२५) उत्तराभाद्रपदा (२६) रेवती (२७) अश्विनी (२८) भरिणी

नक्षत्रों की गलियां

चन्द्रमा की १५ गलियां हैं। उनके मध्य में २८ नक्षत्रों की ८ ही गलियां हैं।

प्रथम गली में—अभिजित, श्रवण, धनिष्ठा शतभिषज्, पूर्वाभाद्रपदा, उत्तराभाद्रपदा, रेवती, अश्विनी, भरिणी, स्वाति, पूर्वाफाल्गुनी, एवं उत्तरा फाल्गुनी ये १२ नक्षत्र संचार करते हैं।

चन्द्र की तृतीय वीथी में पुनर्वसू, मघा सचार करते हैं।

छठी गली में—कृत्तिका का गमन होता है।

सातवीं गली में—रोहिणी, तथा चित्रा का गमन होता है।

आठवीं गली में—विशाखा,

दसवें मार्ग में—अनुराधा,

ग्यारहवे मार्ग में—ज्येष्ठा,

एवं पंद्रहवीं गली में—हस्त, मूल, पूर्वाषाढ़ा, उत्तराषाढ़ा मृगशीर्षा, आर्द्रा, पुष्य तथा आश्लेषा ये शेष ८ नक्षत्र संचार करते हैं। ये नक्षत्र क्रमशः अपनी-अपनी गली में ही भ्रमण करते हैं।

सूर्य, चन्द्र के समान अन्य-अन्य गलियों में भ्रमण नहीं करते हैं।

नक्षत्रों की १ मुहूर्त में गति का प्रमाण

ये नक्षत्र अपनी १ गली को ५९$\frac{३०७}{३६७}$ मुहूर्त में पूरी करते हैं अतः प्रथम परिधि ३१५०८९ में ५९$\frac{३०७}{३६७}$ का भाग देने से १ मुहूर्त के गमन क्षेत्र का प्रमाण आ जाता है। यथा—३१५०८९ ÷ ५९$\frac{३०७}{३६७}$ मु० = ५२६५$\frac{१८२६३}{२१९६०}$ योजन पर्यन्त पहली गली में रहने वाले प्रत्येक नक्षत्र १ मुहूर्त में गमन करते हैं।

आगे-आगे की गलियों की परिधि में उपर्युक्त इस पूर्ण परिधि के गमन क्षेत्र (५९$\frac{३०७}{३६७}$ मु०) का भाग देने से मुहूर्त प्रमाण गमन क्षेत्र का प्रमाण आ जाता है।

विशेष—चन्द्र को १ परिधि को पूर्ण करने में ६२$\frac{२३}{२२१}$

मुहूर्त प्रमाण काल लगता है। उसी वीथी की परिधि को भ्रमण द्वारा पूर्ण करने में सूर्य को ६० मुहूर्त लगते हैं। तथा नक्षत्र गणों को उसी परिधि को पूर्ण करने में ५९ ३०७/३६७ मुहूर्त प्रमाण काल लगता है। क्योंकि चन्द्रमा मंदगामी है। उससे तेज गति सूर्य की है। एवं सूर्य से भी तीव्र गति ग्रहों की है। तथा ग्रहों से भी तीव्र गति नक्षत्रों की एवं इनसे भी तीव्र गति तारागणों की मानी है।

लवण समुद्र का वर्णन

एक लाख योजन व्यास वाले इस जंबूद्वीप को घेरे हुये वलयाकार २ लाख योजन व्यास वाला लवण समुद्र है। उसका पानी अनाज के ढेर के समान शिखाऊ ऊंचा उठा हुआ है। बीच में गहराई १००० योजन की है। एवं समतल से जल की ऊंचाई अमावस्या के दिन ११००० योजन की रहती है। तथा शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा से बढ़ते-बढ़ते ऊंचाई पूर्णिमा के दिन १६००० योजन की हो जाती है। पुनः कृष्णपक्ष की प्रतिपदा से घटते-घटते ऊंचाई क्रमशः अमावस्या के दिन ११००० योजन की रह जाती है।

तट से (किनारे से) ९५ योजन आगे जाने पर गहराई एक योजन की है। इस प्रकार क्रमशः ९५-९५ योजन बढ़ते जाने पर १-१ योजन की गहराई अधिक २ बढ़ती जाती है। इस प्रकार ९५००० योजन जाने पर गहराई १००० योजन की हो जाती है। यही क्रम उस तट से भी जानना चाहिये। इस प्रकार इस लवण

समुद्र के बीचों बीच में १००० योजन तक गहराई १००० योजन की समान है।

लवण समुद्र में ज्योतिष्क देवों का गमन

लवण समुद्र के ज्योतिर्वासी देवों के विमान पानी के मध्य में होकर ही घूमते रहते हैं। क्योंकि लवण समुद्र के पानी की सतह ज्योतिषी देवों के गमन मार्ग की सतह से बहुत ऊंची है। अर्थात् विमान ७९० से ९०० योजन की ऊंचाई तक ही गमन करते हैं। और पानी की सतह ११००० योजन ऊंची है।

जंबूद्वीप की तटवर्ती वेदी की ऊंचाई ८ योजन (३२०००मी०) है तथा चौड़ाई ४ यो० (१६००० मी०) है। पानी की सतह ११००० योजन से बढ़ते-बढ़ते १६००० योजन तक हो जाती है।

इस प्रकार समुद्र का जल तट से ऊंचा होने पर भी अपनी मर्यादा में ही रहता है। कभी भी तट का उलंघन करके बाहर नहीं आता है। इसलिये मर्यादा का उलंघन न करने वालों को समुद्र की उपमा दी जाती है।

आर्य खण्ड में जो समुद्र हैं वे उप समुद्र हैं यह लवण समुद्र नहीं है। और आजकल यहां जिसे सिलोन अर्थात् लंका कहते हैं यह रावण की लंका नहीं है। रावण की लंका तो लवण समुद्र मे है। इस लवण समुद्र में गौतम द्वीप, हंस द्वीप, वानर द्वीप, लंका द्वीप आदि अनेक द्वीप अनादि निधन बने हुये हैं।

अन्तर्द्वीपों का वर्णन

इस लवण समुद्र के दोनों तटों पर २८ अन्तर्द्वीप हैं। चार दिशाओं के ४ द्वीप, ४ विदिशाओं के ४ द्वीप, दिशा, विदिशा की ८ अन्तरालों के ८ द्वीप, हिमवन और शिखरी पर्वत के दोनों तटों के ४, और भरत, ऐरावत के दोनों विजयार्द्धों के दोनों तटों के ८ इस प्रकार—४+४+८+८+४ = २८ हुये।

ये २८ अन्तर्द्वीप लवण समुद्र के इस तटवर्ती हैं। एवं उस तट के भी २४ तथा कालोदधि समुद्र के उभयतट के ४८ सभी मिलकर ९६ अन्तर्द्वीप कहलाते हैं। और इन्हें ही कुभोग भूमि कहते हैं।

कुभोग भूमियां मनुष्य का वर्णन

इन द्वीपों में रहने वाले मनुष्य, कुभोग भूमियां कहलाते हैं। इनकी आयु असंख्यात वर्षों की होती है।

पूर्व दिशा में रहने वाले मनुष्य—एक पैर वाले होते हैं।

पश्चिम ,, ,, —पूंछ वाले होते हैं।

दक्षिण ,, ,, —सींग वाले होते हैं।

उत्तर ,, ,, —गूंगे होते हैं।

एवं विदिशा संबंधि आदि सभी कुत्सित रूप वाले ही होते हैं।

ये मनुष्य सुभोग भूमिवत् युगल ही जन्म लेते हैं। और युगल ही मरते हैं। इनको शरीर संबंधि कोई कष्ट नहीं होता है। एवं कोई २ वहां की मधुर मिट्टी का भक्षण करते हैं। तथा अन्य मनुष्य वहां के वृक्षों के फल फूल आदि का भक्षण करते हैं।

उनका कुरूप होना कुपात्र दान का फल है।

लवण समुद्र के ज्योतिष्क देवों का गमन क्षेत्र

लवण समुद्र में ४ सूर्य एवं ४ चन्द्रमा है। जंबूद्वीप के समान ही ५१० ४८/६१ योजन प्रमाण वाले वहां पर दो गमन क्षेत्र हैं २-२ सूर्य १-१ गमन क्षेत्र में गमन करते है।

यहां के समान ही वहां पर ५१० ४८/६१ योजन में १८४ गलियां हैं। उन गलियों में क्रम से भ्रमण करते हुये सतत ही मेरु को प्रदक्षिणा के क्रम से ही भ्रमण करते है।

जंबूद्वीप की वेदी से लवण समुद्र में ४९९९९ ३७/६१ योजन (१९९९९८४७६ १४/६१ मील) जाने पर प्रथम गमन क्षेत्र की पहली परिधि आती है।

और इसी पहली गली से ९९९९९ १२/६१ यो० (३९९९९६,८५८ ...
मील) जाने पर दूसरे गमन क्षेत्र की पहली गली आती है। य...
एक सूर्य से दूसरे सूर्य के बीच का अन्तराल है। तथा लवण सम...
के वाह्य तट से ४९९९९ ३१/६१ योजन इधर ही दूसरे गमन क्षेत्र ...
प्रथम गली आती है। अर्थात्—

जंबूद्वीप की वेदी से प्रथम सूर्य का अन्तर ४९९९९ $\frac{३७}{६१}$ योजन है तथा सूर्य का बिंब $\frac{४८}{६१}$ यो० का है। इस सूर्य की प्रथम गली से दूसरे सूर्य की प्रथम गली का अन्तर ९९९९९ $\frac{१३}{६१}$ यो० है एवं यहां भी प्रथम गली में सूर्य बिंब का विस्तार $\frac{४८}{६१}$ यो० है। इसके आगे लवण समुद्र की अन्तिम वेदी तक ४९९९९ $\frac{३७}{६१}$ योजन है। यथा–
४९९९९ $\frac{३७}{६१}$ + $\frac{४८}{६१}$ + ९९९९९ $\frac{१३}{६१}$ + $\frac{४८}{६१}$ + ४९९९९ $\frac{३७}{६१}$ = २००००० ऐसे २ लाख योजन विस्तार वाला लवण समुद्र है। १-१ गमन क्षेत्र में सूर्य की १८४-१८४ गलियां एवं चन्द्रमा की १५–१५ गलियां हैं। प्रत्येक सूर्य आमने सामने रहते हुये ६० मुहूर्त में १–१ परिधि को पूरा करते हैं। जंबूद्वीप के समान ही वहां भी दक्षिणायन एवं उत्तरायण की व्यवस्था है। अन्तर केवल इतना ही है कि—जंबूद्वीप की अपेक्षा लवण समुद्र की गलियों की परिधियां अधिक-अधिक बड़ी हैं। अतः सूर्य चन्द्रादिकों का मुहूर्त प्रमाण गमन क्षेत्र भी अधिक-अधिक होता गया है।

धातकी खण्ड के सूर्य चन्द्रादि का वर्णन

धातकी खण्ड व्यास ४ लाख योजन का है। इसमें १२ सूर्य एवं १२ चन्द्रमा है। ५१० $\frac{४८}{६१}$ योजन प्रमाण वाले यहां पर ६ गमन क्षेत्र हैं। एक-एक गमन क्षेत्रों में पूर्ववत् २-२ सूर्य एवं चन्द्र परिभ्रमण करते हैं।

जबूद्वीप के समान ही इन एक-एक गमन क्षेत्रों में सूर्य की

१८४-१८४ गलियां एवं चन्द्र की १५-१५ गलियां हैं। गमनागमन आदि क्रम सब यहीं के समान हैं।

लवण समुद्र की वेदी से (तट से) ३३३३२$\frac{३}{३}\frac{४८}{६१}$ योजन जाकर प्रथम सूर्य की प्रथम परिधि है। एवं सूर्य बिंब का प्रमाण $\frac{४८}{६१}$ यो० छोड़ कर आगे—६६६६५$\frac{१}{१}\frac{६}{८}\frac{१}{३}$ योजन जाकर दूसरे सूर्य की प्रथम परिधि है। यहां पर सूर्य बिंब का प्रमाण $\frac{४८}{६१}$ यो० छोड़ कर पुनः आगे ६६६६५$\frac{१}{१}\frac{६}{८}\frac{१}{३}$ योजन पर तृतीय सूर्य की प्रथम परिधि है। इस क्रम से छठे सूर्य के बिंब के बाद ३३३३२$\frac{३}{३}\frac{४८}{६१}$ योजन पर धातकी खण्ड की अन्तिम तट वेदी है।

यथा—३३३३२$\frac{३}{३}\frac{४८}{६१}$+$\frac{४८}{६१}$+६६६६५$\frac{१}{१}\frac{६}{८}\frac{१}{३}$+$\frac{४८}{६१}$+६६६६५$\frac{१}{१}\frac{६}{८}\frac{१}{३}$+$\frac{४८}{६१}$+६६६६५$\frac{१}{१}\frac{६}{८}\frac{१}{३}$+$\frac{४८}{६१}$+६६६६५$\frac{१}{१}\frac{६}{८}\frac{१}{३}$ +$\frac{४८}{६१}$ + ६६६६५$\frac{१}{१}\frac{६}{८}\frac{१}{३}$ +$\frac{४८}{६१}$+३३३३२$\frac{३}{३}\frac{४८}{६१}$=४००००० का धातकी खण्ड द्वीप है। यहां को भी गलियों की परिधियां बहुत ही बड़ी २ होती गई है। अतः यहां पर सूर्य की गति बहुत ही तीव्र होती गई है। यहां के ३ वलय के ६ सूर्य, चन्द्र सुमेरु की ही प्रदक्षिणा को देते हुये भ्रमण करते हैं। बाकी के ३ वलय के सूर्य चन्द्र धातकी खण्ड संबंधि दो मेरु सहित सुमेरु की अर्थात् तीनों मेरुवों की प्रदक्षिणा करते हुये भ्रमण करते हैं।

कालोदधि के सूर्य, चन्द्रादिकों का वर्णन

कालोदधि समुद्र का व्यास ८ लाख योजन का है। यहां पर

४२ सूर्य एवं ४२ चन्द्रमा है। यहां पर ५१० $\frac{४८}{६१}$ योजन प्रमाण वाले २१ गमन क्षेत्र अर्थात् वलय हैं। यहां पर भी प्रत्येक वलय में २-२ सूर्य एवं चन्द्र तथा उनकी १८४-१८४ एवं १५-१५ गलियां हैं। मात्र परिधियां बहुत ही बड़ी २ होने से गमन अति शीघ्र रूप होता जाता है।

धातकी खण्ड की अन्तिम तट वेदी से १९०४७ $\frac{२८६}{१२८१}$ योजन जाकर प्रथम सूर्य का प्रथम वलय है। वहां $\frac{४८}{६१}$ यो० प्रमाण सूर्य बिंब के प्रमाण को छोड़ कर आगे ३८०९४ $\frac{४७५}{१२८१}$ योजन जाकर द्वितीय सूर्य की प्रथम गली है। ततर इतने-इतने अन्तराल से ही २१ वलय पूर्ण होने पर १९०४७ $\frac{२८६}{१२८१}$ योजन जाकर कालोदधि समुद्र की अन्तिम तट वेदी है। अत: २१ वलय के अन्तरालों का ३८०९४ $\frac{४७५}{१२८१}$ इतना-इतना प्रमाण तथा वेदी से प्रथम वलय एवं अन्तिम वलय से अन्तिम वेदी का १९०४७ $\frac{२८६}{१२८१}$ यो० प्रमाण एवं २१ बार सूर्य बिंब के $\frac{४८}{६१}$ योजन प्रमाण का जोड़ करने से ८००००० योजन प्रमाण विस्तार वाला कालोदधि समुद्र है।

पुष्करार्ध द्वीप के सूर्य, चन्द्र

पुष्कर वर द्वीप १६ लाख योजन का है। उसमें बीच में वलयाकार-चूड़ी के (आकार) वाला मानुषोत्तर पर्वत है। मानुषोत्तर पर्वत के इस तरफ ही मनुष्यों के रहने के क्षेत्र हैं। इस आधे पुष्करवर द्वीप में भी धातकी खण्ड के समान दक्षिण और उत्तर दिशा में दो इष्वाकार पर्वत हैं। जो एक ओर से कालोदधि

समुद्र को छूते हैं एवं दूसरी ओर मानुषोत्तर पर्वत का स्पर्श करते हैं। और यहां पर भी पूर्व एवं पश्चिम में १-१ मेरू होने से २ मेरू हैं तथा भरत क्षेत्रादि क्षेत्र एवं हिमवन् पर्वत आदि पर्वतों की भी संख्या दूनी-दूनी है।

मानुषोत्तर पर्वत के निमित्त से इस द्वीप के दो भाग हो जाने से ही इस आधे एक भाग को पुष्करार्ध कहते हैं।

इस पुष्करार्ध द्वीप में ७२ सूर्य एवं ७२ चन्द्रमा हैं। इनके ५१० ४८/६१ योजन प्रमाण वाले ३६ गमन क्षेत्र (वलय) हैं। प्रत्येक में २-२ सूर्य एवं २-२ चन्द्र है। एवं एक एक वलय में १८४-१८४ सूर्य की गलियां तथा १५-१५ चन्द्र की गलियां हैं। १८ वलयों के सूर्य चन्द्र आदि १ जंबूद्वीप संबंधि एवं २ धातकी खण्ड संबंधि इन ३ मेरूवों की ही प्रदक्षिणा करते हैं। शेष १८ वलय के सूर्य, चन्द्रादि २ पुष्करार्ध के मेरू सहित पांचों ही मेरूवों की सतत प्रदक्षिणा करते रहते हैं।

विशेष—जंबूद्वीप के बीचोंबीच में १ सुमेरू पर्वत है। तथा धातकी खण्ड में विजय, अचल नाम के दो मेरू हैं। और वहां १२ सूर्य १२ चन्द्रमा हैं, तथा उनके ६ वलय हैं जो कि ३ वलय, दोनों मेरूवों के इधर और ३ वलय मेरूवों के उधर है। इसलिए—जंबूद्वीप के २ सूर्य एवं २ चन्द्र, लवण समुद्र के ४ सूर्य, ४ चन्द्र, तथा धातकी खण्ड के मेरूवों के इधर के ३ वलय के ६ सूर्य, ६ चन्द्र, सपरिवार जंबूद्वीपस्थ १ सुमेरू पर्वत की ही प्रदक्षिणा देते हैं। आगे पुष्करार्ध में मंदर और विद्युन्माली नाम के दो मेरू हैं। कालोदधि

समुद्र में ४२ सूर्य ४२ चन्द्रमा हैं उनके २१ गमन क्षेत्र हैं। तथा पुष्करार्ध में ७२ सूर्य एवं ७२ चन्द्रमा हैं। उनके ३६ वलय में १८ वलय तो दोनों मेरूवों के इधर एवं १८ वलय मेरूवों के उधर हैं। अत: धातकी खण्ड के ३ वलय के ६ सूर्य, ६ चन्द्र तथा कालोदधि के ४२ सूर्य, ४२ चन्द्र एवं पुष्करार्ध के मेरू के इधर के १८ वलय के ३६ सूर्य, ३६ चन्द्र सपरिवार जंबूद्वीपस्थ १ सुमेरू पर्वत और धातकी-खण्ड के दो मेरू इस प्रकार तीन मेरू की ही प्रदक्षिणा देते हैं। और पुष्करार्द्ध के २ मेरूवों के उधर के १८ वलय के ३६ सूर्य, ३६ चन्द्र सपरिवार पांचों ही मेरूवों की प्रदक्षिणा करते हैं। इस प्रकार पांच मेरू की प्रदक्षिणा का क्रम है।

कालोदधि समुद्र की वेदी से सूर्य का अन्तराल ११११० $\frac{७५५}{१०८९}$ योजन है। तथा प्रथम वलय के सूर्य से द्वितीय वलय के सूर्य का अन्तराल २२२२१ $\frac{२३६}{५८९}$ योजन का है।

इसी प्रकार प्रत्येक वलय के सूर्य से अगले वलय के सूर्य का २२२२१ $\frac{२३६}{५८९}$ योजन है। तथा अन्तिम वलय के सूर्य से मानुषोत्तर पर्वत का अंतराल ११११० $\frac{७५५}{१०८९}$ योजन का है अतएव पैंतीस बार २२२२१ $\frac{२३६}{५८९}$ की संख्या को २ बार ११११० $\frac{७५५}{१०८९}$ संख्या को एवं ३६ बार सूर्य बिंब प्रमाण $\frac{४८}{६१}$ की संख्या को रख कर जोड़ देने से ८ लाख प्रमाण पुष्करार्ध द्वीप का प्रमाण आ जाता है। यथा—

२२२२१ $\frac{२३६}{५८९}$ × ३५ = ७७७७५० $\frac{१३०}{५८९}$ एवं ११११० $\frac{७५५}{१०८९}$ × २
२२२२१ $\frac{२३६}{५८९}$ तथा $\frac{४८}{६१}$ × ३६ = २८ $\frac{२०}{६१}$ कुल = ८००००० हुआ।

विशेष— पुष्करार्ध द्वीप की वाह्य परिधि–१४२३०२४९ योजन की है। इससे कुछ कम वहां के सूर्य के अन्तिम गली की परिधि होगी। अत: इसमें ६० मुहूर्त का भाग देने से २७०५०४ १/२० योजन प्रमाण हुआ। वहां के सूर्य के एक मुहूर्त की गतिका यह प्रमाण है।

अर्थात्— जब सूर्य जंबूद्वीप में प्रथम गली में हैं तब उसका १ मुहूर्त में गमन करने का प्रमाण २१००५१३३३ १/३ मील होता है। तथा पुष्करार्ध के अन्तिम वलय की अन्तिम गली में वहां के सूर्य का १ मुहूर्त में गमन—१४८६८३२६६ २/३ मील के लगभग है।

मनुष्य क्षेत्र का वर्णन

मानुषोत्तर पर्वत के इधर-उधर ४५ लक्ष योजन तक के क्षेत्र में ही मनुष्य रहते हैं। अर्थात्—

जंबूद्वीप का विस्तार	१ लक्ष योजन
लवण समुद्र के दोनों ओर का विस्तार	४ ,, ,,
धातकी खण्ड के दोनों ओर का विस्तार	८ ,, ,,
कालोदधि समुद्र के दोनों ओर का विस्तार	१६ ,, ,,
पुष्करार्ध द्वीप के दोनों ओर का विस्तार	१६ ,, ,,

जंबूद्वीप को वेष्टित करके आगे-आगे द्वीप समुद्र होने से दूसरी तरफ से भी लवण समुद्र आदि के प्रमाण को लेने से १ + २ + ४ + ८ + ८ + ८ + ८ + ४ + २ = ४५००००० योजन होते हैं।

मानुषोत्तर पर्वत के बाहर मनुष्य नहीं जा सकते हैं। आगे-आगे असंख्यात द्वीप समुद्रों तक अर्थात् अन्तिम स्वयंभूरमण

समुद्र पर्यन्त पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च पाये जाते हैं। तथा असंख्यातों व्यन्तर देवों के आवास भी बने हुये हैं। और सभी देवगण वहां गमनागमन कर सकते हैं।

मध्य लोक १ राजू प्रमाण है। मेरु के मध्य भाग से लेकर स्वयंभूरमण समुद्र तक आधा राजू होता है। अर्थात् आधे का आधा १/४ राजू स्वयंभूरमण समुद्र की अभ्यन्तर वेदी तक होता है और १/४ राज में स्वयम्भूरमण द्वीप व सभी असंख्यात द्वीप समुद्र आ जाते हैं।

अढाई द्वीप के चन्द्र (परिवार सहित)

द्वीप, समुद्रों के नाम	चन्द्र	सूर्य	ग्रह	नक्षत्र	तारे
जम्बू द्वीप में	२	२	१७६	५६	६६९७५ × २ कोड़ाकोड़ी
लवण समुद्र में	४	४	३५२	११२	६६९७५ × ४ ,,
धातकी खंड में	१२	१२	१०५६	३३६	६६९७५ × १२ ,,
कालोदधि समुद्र	४२	४२	३६९६	११७६	६६९७५ × ४२ ,,
पुष्करार्ध में	७२	७२	६३३६	२०१६	६६९७५ × ७२ ,,
कुल योग	१३२	१३२	११६१६	३६९६	८८४०७०० कोड़ाकोड़ी

जम्बूद्वीपादि के नाम एवं उनमें क्षेत्रादि व्यवस्था

जम्बूद्वीप में सुमेरु पर्वत के उत्तर दिशा में उत्तरकुरु में १ जम्बू (जामुन) का वृक्ष है। उसी प्रकार धातकी खण्ड में १ धातकी (आंवला) का वृक्ष है। तथैव पुष्करार्ध में पुष्कर वृक्ष है। ये विशाल पृथ्वी कायिक वृक्ष हैं। इन्हीं वृक्षों के नाम से उपलक्षित नाम वाले ये द्वीप हैं।

जिस प्रकार जम्बूद्वीप में क्षेत्र पर्वत, और नदियां हैं उसी प्रकार से धातकी खण्ड में पुष्करार्ध में उन्हीं-उन्हीं नाम के दूने-दूने क्षेत्र, पर्वत, नदियां एवं मेरु आदि हैं।

विदेह क्षेत्र का विशेष वर्णन

जंबूद्वीप के बीच में सुमेरु पर्वत है। इसके दक्षिण में निषध पर्वत और उत्तर में नील पर्वत है। यह मेरु विदेह क्षेत्र के ठीक बीच में है। निषध पर्वत से सीतोदा और नील पर्वत से सीता नदी निकली है। सीतोदा नदी पश्चिम समुद्र में और सीता नदी पूर्व समुद्र में प्रवेश करती है। इसलिये इनसे विदेह के चार भाग हो गये हैं। दो भाग मेरु के एक ओर और दो भाग मेरु के दूसरी ओर एक-एक विदेह में ४-४ वक्षार पर्वत और तीन-तीन विभंग नदियां होने से १-१ विदेह के आठ-आठ भाग हो गये हैं।

इन चार विदेहों के बत्तीस भाग (विदेह) हो गये हैं। ये बत्तीस

विदेह क्षेत्र जंबूद्वीप के १ मेरु संबंधि हैं। इस प्रकार ढाई द्वीप के ५ मेरु संबंधी ३२ × ५ = १६० विदेह क्षेत्र होते है।

१७० कर्म भूमि का वर्णन

इस प्रकार १६० विदेह क्षेत्रों में १-१ विजयार्ध एवं गंगा, सिंधु तथा रक्ता, रक्तोदा नाम की २-२ नदियों से ६-६ खण्ड होते हैं। जिसमें मध्य का आर्य खण्ड एवं शेष पांचों म्लेच्छ खण्ड कहलाते हैं।

पांच मेरु सम्बन्धी ५ भरत, ५ ऐरावत और ५ महाविदेहों के १६० विदेह:—५+५+१६० = १७० हुये। ये १७० ही कर्म भूमियां हैं।

एक राजू चौड़े इस मध्य लोक में असंख्यातों द्वीप समुद्र हैं। उनके अन्तर्गत ढाई द्वीप की १७० कर्म भूमियों में ही मनुष्य तपश्चरणादि के द्वारा कर्मों का नाश करके मोक्ष प्राप्त कर सकते हैं। इसलिये ये क्षेत्र कर्म भूमि कहलाते है।

इन क्षेत्रों में काल परिवर्तन का क्रम

भरत एवं ऐरावत क्षेत्रों में पहले काल से लेकर छठे काल तक क्रम से परिवर्तन होता रहता है। वह दो भेद रूप है, अवसर्पिणी एवं उत्सर्पिणी।

अवसर्पिणी—(१) सुषमा सुषमा (२) सुषमा (३) सुषमा दुषमा (४) दुष्षम सुषमा (५) दुषमा (६) अति दुषमा।

पुनः विपरीत क्रम मे ही—६ काल परिवर्तन होता रहता है।

उत्सर्पिणी—(६) अति दुषमा (५) दुषमा (४) दुषम सुषमा (३) सुषम दुषमा (२) सुषमा (१) सुषमा सुषमा।

प्रथम द्वितीयकाल में उत्तम मध्यम जघन्य भोग भूमि की व्यवस्था रहती है। तथा चतुर्थ काल मे कर्म भूमि शुरू होती है। चतुर्थकाल में तीर्थंकर, चक्रवर्ती आदि शलाका पुरुषों का जन्म एवं सुख की बहुलता रहती है। पुण्यादि कार्य विशेष होते हैं एवं मनुष्य उत्तम संहनन आदि सामग्री प्राप्त कर कर्मों का नाश करते रहते हैं। पंचमकाल में उत्तम संहनन आदि पूर्ण सामग्री का अभाव एवं केवली, श्रुत केवली का अभाव होने से पंचम काल के जन्म लेने वाले मनुष्य इसी भव से मोक्ष प्राप्त नहीं कर सकते है।

१६० विदेह क्षेत्रों में सदैव चतुर्थकाल के प्रारंभवत् सब व्यवस्था रहती है।

भरत, ऐरावत क्षेत्रों में जो विजयार्ध पर्वत हैं उनमें जो विद्याधरों की नगरियां हैं एवं जो भरत, ऐरावत, क्षेत्रों में ५-५ म्लेच्छ खण्ड हैं उनमें, चतुर्थ काल में आदि से अन्त तक जो परिवर्तन होता है। वही परिवर्तन होता रहता है।

३० भोग भूमियां

सुमेरु पर्वत के ठीक उत्तर में उत्तर कुरु और दक्षिण में देव

कुरु है। ये उत्तर कुरु, देव कुरु उत्तम भोग भूमि हैं और हरि क्षेत्र, रम्यक क्षेत्र में मध्यम भोग भूमि की व्यवस्था है। तथा हैरण्यवत, हैमवत में जघन्य भोग भूमि है।

इस प्रकार जम्बूद्वीप की १ मेरु सम्बन्धी ६ भोग भूमियां हैं।

इसी प्रकार धातकी खण्ड की २ मेरु सम्बन्धी १२, तथा पुष्करार्ध की २ मेरु सम्बन्धी १२ इस प्रकार—ढाई द्वीप की पांचों मेरु सम्बन्धी—६ + १२ + १२ = ३० भोग भूमियां हैं। जहां पर १० प्रकार के कल्प वृक्षों के द्वारा उत्तम-उत्तम भोगोपभोग सामग्री प्राप्त होती है उसे भोग भूमि कहते हैं।

जंबूद्वीप के अकृत्रिम चैत्यालय

जंबूद्वीप में ७८ अकृत्रिम जिन चैत्यालय हैं। यथा सुमेरू-पर्वत संबंधि चैत्यालय १६ हैं। सुमेरू पर्वत की विदिशा—

में ४ गंज दंत के चैत्यालय ४ हैं।
हिमवदादि षट् कुलाचल के चैत्यालय ६ हैं।
विदेह के १६ वक्षार पर्वतों के चैत्यालय १६ हैं।
३२ विदेहस्थ विजयार्ध के चैत्यालय ३२ हैं।
भरत, ऐरावत के २ विजयार्ध के चैत्यालय २ हैं।
देवकुरु, उत्तर कुरु के जंबू, शाल्मलि २ वृक्षों के चैत्यालय २ हैं।

इस प्रकार १६ + ४ + ६ + १६ + ३२ + २ + २ = ७८ जिन चैत्यालय हैं।

मध्यलोक के संपूर्ण अकृत्रिम चैत्यालय

जंबूद्वीप के समान ही धातकी खण्ड, एवं पुष्करार्ध में २–२ मेरु के निमित्त से सारी रचना दूनी-दूनी होने से चैत्यालय भी दूने दूने हैं। तथा धातकी खण्ड एवं पुष्करार्ध में २-२ इष्वाकार पर्वत पर भी २-२ चैत्यालय हैं। मानुषोत्तर पर्वत पर चारों ही दिशाओं के ४ चैत्यालय हैं। आठवें नंदीश्वर द्वीप के चारों दिशाओं के ५२ हैं। ग्यारहवें कुण्डलवर द्वीप में स्थित कुण्डलवर पर्वत पर ४ दिशा संबंधी ४ चैत्यालय हैं।

तेरहवें रूचकवर द्वीप में स्थित रूचकवर पर्वत पर चार दिशा संबंधी ४ चैत्यालय हैं। इस प्रकार ४५८ चैत्यालय होते हैं। यथा—

जंबूद्वीप में	चैत्यालय	७८
धातकी खण्ड में	,,	१५६
पुष्करार्ध	,,	१५६
धातीकी खण्ड, पुष्करार्ध में स्थित इष्वाकार पर्वत	,,	४
मानुषोत्तर पर्वत	,,	४
नंदीश्वर द्वीप	,,	५२
कुण्डलगिरि	,,	४
रूचकवरगिरि	,,	४

७८ + १५६ + १५६ + ४ + ४ + ५२ + ४ + ४ = ४५८ चैत्यालय हैं। इन मध्यलोक संबंधी ४५८ चैत्यालयों को एवं उनमें स्थित सर्व जिन प्रतिमाओं को मैं मन वचन काय से नमस्कार करता हूं।

ढाई द्वीप के बाहर स्थित ज्योतिष्क देवों का वर्णन

मानुषोत्तर पर्वत के बाहर जो असंख्यात द्वीप और समुद्र हैं उनमें न तो मनुष्य उत्पन्न ही होते हैं और न वहां जा ही सकते हैं।

मानुषोत्तर पर्वत से परे आधा पुष्कर द्वीप ८ लाख योजन का है। इस पुष्करार्ध में १२६४ सूर्य एवं इतने ही (१२६४) चन्द्रमा हैं। अर्थात्—मानुषोत्तर पर्वत से आगे ५०००० योजन की दूरी पर प्रथम वलय है। इस प्रथम वलय की सूची[1] का विस्तार ४६००००० योजन है। उसकी परिधि १४५४६४७७ योजन प्रमाण है।

इस प्रथम वलय में (अभ्यन्तर पुष्करार्ध में ७२ से दुगुने)

१. पुष्करार्ध के प्रथम वलय के इस ओर से बीच में जंबूद्वीप आदि को करके उस ओर तक के पूरे माप को सूची व्यास कहते हैं। यथा—मानुषोत्तर पर्वत के इस ओर से उस ओर तक ४५ लाख एवं ५० हजार इधर व ५० हजार उधर का मिलाकर ४६ लाख होता है।

१४४ सूर्य एवं १४४ चन्द्रमा हैं। तो इस प्रथम वलय की परिधि में १४४ का भाग देने से सूर्य से सूर्य का अन्तर प्राप्त होता है। यथा—
१४५४६४७७ ÷ १४४ = १०१०१९ $\frac{२९}{१४४}$ योजन है। इसमें से सूर्य बिंब और चन्द्र बिंब के प्रमाण को कम कर देने पर उनका बिंब रहित अन्तर इस प्रकार प्राप्त होता है। $\frac{४८}{६१}$ × १४४ = $\frac{६९१२}{८७८४}$,
१०१०१९ $\frac{२९}{१४४}$ — $\frac{६९१२}{८७८४}$ = १०१०१८ $\frac{३५८१}{८७८४}$ यो० सूर्य बिंब से दूसरे सूर्य का अन्तर है।

इस प्रकार पुष्करार्ध में ८ वलय हैं। प्रथम वलय से १ लाख यो० जाकर दूसरा वलय है। इस वलय में प्रथम वलय के १४४ से ४ सूर्य अधिक है। इसी प्रकार आगे के ६ वलयों में ४-४ सूर्य एवं ४-४ चन्द्र अधिक २ होते गये हैं। जिस प्रकार प्रथम वलय से १ लाख योजन दूरी पर द्वितीय वलय है। उसी प्रकार १-१ लाख योजन दूरी पर आगे-आगे के वलय हैं। इस प्रकार क्रम से सूर्य, चन्द्रों की संख्या भी बढ़ती गई है। जिस प्रकार प्रथम वलय मानुषोत्तर पर्वत से ५० हजार योजन पर है उसी प्रकार अन्तिम वलय से पुष्करार्ध की अन्तिम वेदी ५० हजार योजन पर है बाकी मध्य के सभी वलय १-१ लाख यो० के अन्तर से है।

प्रथम वलय में १४४ दूसरे में १४८ तीसरे में १५२ इत्यादि ४-४ बढ़ते हुये अन्तिम वलय में १७२ सूर्य एवं १७२ चंद्रमा हैं। इस प्रकार पुष्करार्ध के आठों वलयों के कुल मिलाकर १२६४ सूर्य, १२६४ चंद्रमा हैं। ये गमन नहीं करते हैं अपनी-अपनी जगह पर

ही स्थित हैं। इसलिये वहां दिन रात का भेद नहीं दिखाई देता है।

पुष्कर वर समुद्र के सूर्य, चन्द्रादिक

पुष्करवर द्वीप को घेरे हुये पुष्कर वर समुद्र ३२ लाख योजन का है। इसमें प्रथम वलय पुष्कर वर द्वीप की वेदी से ५०००० योजन आगे है। और इस प्रथम वलय से १-१ लाख योजन की दूरी पर आगे-आगे के वलय हैं। अंतिम वलय से ५०००० योजन जाकर समुद्र की अन्तिम तट वेदी है।

इस पुष्कर वर समुद्र में ३२ वलय हैं। प्रथम वलय में २५२८ सूर्य एवं इतने ही चंद्रमा हैं। अर्थात् बाह्य पुष्कर द्वीप के कुल मिलकर सूर्य १२६४ थे उसके दुगुने २५२८ होते हैं। अगले समुद्र के प्रथम वलय में दूने होते हैं। पुनः प्रत्येक वलयों में ४-४ सूर्य, चंद्र बढ़ते गये हैं। इस प्रकार बढ़ते-बढ़ते अन्तिम बत्तीसवें वलय में २६५२ सूर्य एवं २६५२ चंद्रमा होते हैं। पुष्कर वर समुद्र के ३२ वलयों के सभी सूर्यों का जोड़ ८२८८० है, एवं चन्द्र भी इतने ही हैं।

असंख्यात द्वीप समुद्रों में सूर्य, चन्द्रादिक

इसी प्रकार आगे के द्वीप में ८२८८० से दूने सूर्य, चंद्र प्रथम वलय में हैं और आगे के वलयों में ४-४ से बढ़ते जाते है। वलय भी ३२ से दूने ६४ हैं।

पुनः इस द्वीप में ६४ वलयों के सूर्यों की जो संख्या है उससे दुगुने अगले समुद्र के प्रथम वलय में होंगे। पुनः ४–४ की वृद्धि से बढ़ते हुये अन्तिम वलय तक जायेंगे। वलय भी पूर्व द्वीप से दुगुने ही होंगे। इस प्रकार यही क्रम आगे के असंख्यात द्वीप समुद्रों में सर्वत्र अन्तिम स्वयंभूरमण द्वीप, समुद्र तक जानना चाहिये।

मानुषोत्तर पर्वत आगे से के स्वयंभूरमण समुद्र तक सभी ज्योतिर्वासी देवों के विमान अपने-अपने स्थानों पर ही स्थिर हैं। गमन नहीं करते हैं।

इस प्रकार असंख्यात द्वीप समुद्रों में असंख्यात द्वीप समुद्रों की संख्या से भी अत्यधिक असंख्यातों सूर्य, चन्द्र हैं। एवं उनके परिवार देव ग्रह, नक्षत्र तारागण आदि भी पूर्ववत् एक चन्द्र की परिवार संख्या के समान ही असंख्यातों हैं। इन सभी ज्योतिर्वासी देवों के विमानों में प्रत्येक में १–१ जिन मंदिर है। उन असंख्यात जिन मंदिर एवं उनमें स्थित सभी जिन प्रतिमाओं को मेरा मन वचन काय से नमस्कार हो।

ज्योतिर्वासी देवों में उत्पत्ति के कारण

देव गति के ४ भेद हैं। भवनवासी, व्यन्तरवासी, ज्योतिर्वासी, एवं वैमानिक। सम्यग्दृष्टि जीव वैमानिक देवों में ही उत्पन्न होते हैं। भवनत्रिक में भवन, व्यन्तर, ज्योतिष्क देव में उत्पन्न नहीं होते हैं। क्योंकि ये जिनमत के विपरीत धर्म को पालने वाले हैं।

उन्मार्गचारी हैं। निदान पूर्वक मरने वाले है। अग्निपात झंझा-पात, आदि से मरने वाले हैं। अकाम निर्जरा करने वाले हैं। पंचाग्नि आदि कुतप करने वाले हैं। या सदोष चारित्र पालने वाले हैं। सम्यग्दर्शन से रहित ऐसे जीव इन ज्योतिष्क आदि देवों में उत्पन्न होते हैं।

ये देव भी भगवान के पंचकल्याण आदि विशेष उत्सवों के देखने से, या अन्य देवों की विशेष ऋद्धि (विभूति) आदि देखने से या जिनबिंब दर्शन आदि कारणों से सम्यग्दर्शन को प्राप्त कर सकते हैं। तथा अकृत्रिम, चैत्यालयों की पूजा एवं भगवान के पंच-कल्याणक आदि में आकर महान पुण्य का संचय भो कर सकते हैं। एवं अनेक प्रकार की अणिमा महिमा आदि ऋद्धियों से युक्त इच्छा-नुसार अनेक लोगों का अनुभव करते हुये यत्र-तत्र क्रीड़ा आदि के लिये भी परिभ्रमण करते रहते हैं। ये देव तीर्थङ्कर देवों के पंच कल्याणक उत्सव में या क्रीड़ा आदि के लिये अपने मूल शरीर से कहीं भी नहीं जाते हैं। विक्रिया के द्वारा दूसरा शरीर बनाकर ही सर्वत्र जाते आते हैं।

यदि कदाचित् वहां पर सम्यकत्व को नहीं प्राप्त कर पाते हैं तो मिथ्यात्व के निमित्त से मरण के ६ महिने पहले से ही अत्यंत दुःखी होने से आर्त ध्यान पूर्वक मरण करके मनुष्य गति में या पंचे-न्द्रिय तिर्यन्चों में जन्म लेते हैं। यदि अत्यधिक संक्लेश परिणाम से मरते हैं तो एकेन्द्रिय पृथ्वी, जल वनस्पति कायिक में भी जन्म ले लेते हैं।

तथा यदि वहां सम्यग्दर्शन को प्राप्त कर लेते हैं तो शुभ परिणाम से मरकर मनुष्य भव में आकर दीक्षा आदि उत्तम पुरुषार्थ के द्वारा कर्मों का नाश कर मोक्ष को भी प्राप्त कर लेते हैं।

देवगति में संयम को धारण नहीं कर सकते हैं। एवं संयम के बिना कर्मों का नाश नहीं होता है। अतः मनुष्य पर्याय को पाकर संयम को धारण करके कर्मों के नाश करने का प्रयत्न करना चाहिए। इस मनुष्य जीवन का सार संयम ही है।

योजन एवं कोस बनाने की विधि

पुद्गल के सबसे छोटे अविभागी टुकड़े को परमाणु कहते हैं।

ऐसे अनंतानंत परमाणुओं का	१ अवसन्नासन्न।
८ अवसन्नासन्न का	१ सन्नासन्न।
८ सन्नासन्न का	१ त्रुटिरेणु।
८ त्रुटिरेणु का	१ त्रसरेणु।
८ त्रसरेणु का	१ रथरेणु

८ रथरेणु का, उत्तम भोग भूमियों के बाल का १ अग्र भाग

उत्तम भोग भूमियों के बाल के ८ अग्र भागों का	मध्यम भोग भूमियों के बाल का १ अग्र भाग
मध्यम भोग भूमियों के बाल के ८ अग्र भागों का	जघन्य भोग भूमियों के बाल का १ अग्र भाग

जघन्य भोग भूमियों के बाल के ८ अग्र भागों का	कर्म भूमियों के बाल का १ अग्र भाग
कर्म भूमियां के बाल के ८ अग्र भागों की	१ लीख
आठ लीख की	१ जूं
८ जूं का	१ जव
८ जव का	१ अंगुल

इसे ही उत्सेधांगुल कहते हैं। इस उत्सेधांगुल का ५०० गुणा प्रमाणांगुल होता है।

६ उत्सेध अंगुल का	१ पाद
२ पाद के बराबर	१ बालिस्त
२ बालिस्त ,,	१ हाथ
२ हाथ ,,	१ रिक्कु
२ रिक्कु ,,	१ धनुष
२००० धनुष का	१ कोस
४ कोस का	१ योजन (लघु)
५०० योजन का	१ महा योजन

२००० धनुष का १ कोश है। अतः १ धनुषमें ४ हाथ होने से

८००० हाथ का १ कोश हुआ । एवं १ कोश में २ मील मानने से ४००० हाथ का १ मील होता है।

एक महा योजन में २००० कोश होते हैं। एक कोशमें २ मील मानने से १ महायोजन में ४००० मील हो जाते हैं। अतः ४००० मील के हाथ बनाने के लिए १ मील सम्बन्धी ४००० हाथ से गुणा करने पर ४००० × ४००० = १६०००००० अर्थात् एक महा-योजन में १ करोड़ साठ लाख हाथ हुये ।

वर्तमान में रैखिक माप में १७६० गज का १ मील मानते हैं। यदि १ गज में २ हाथ माने तो १७६० × २ = ३५२० हाथ का १ मील हुआ। पुनः उपर्युक्त एक महायोजन के हाथ १६०००००० में ३५२० हाथ का भाग देने से १६०००००० ÷ ३५२० = ४५४५ ५/११ आये इस तरह एक महायोजन में वर्तमान माप से ४५४५ ५/११ मील हुये।

परंतु इस पुस्तक में हमने स्थूल रूप से व्यवहार से १ कोश में २ मील की प्रसिद्धि के अनुसार सुविधा के लिये सर्वत्र महायोजन के २००० कोश को २ मील से ही गुणा कर एक महायोजन के ४००० मील ही मानकर उसी से ही गुणा किया है।

जैन सिद्धांत में ४ कोश का लघु योजन एवं २००० कोश का महायोजन माना है। तथा ज्योतिर्बिम्ब और उनकी ऊंचाई आदि का वर्णन महायोजन से ही माना है।

भूभ्रमण का खंडन

(श्लोकवार्तिक तीसरे अध्याय के प्रथम सूत्र की हिंदी से)
कोई आधुनिक विद्वान कहते हैं कि जैनियों की मान्यता के अनुसार यहपृथ्वी वलयाकार चपटी गोल नहीं है। किंतु यह पृथ्वी गेंद या नारंगी के समान गोल आकार की है। यह भूमि स्थिर भी नहीं है। हमेशा ही ऊपर नीचे घूमती रहती है। तथा सूर्य, चन्द्र, शनि, शुक्र आदि ग्रह, अश्विनी भरिणी आदि नक्षत्रचक्र, मेरू के चारों तरफ प्रदक्षिणा रूप अवस्थित हैं घूमते नहीं हैं। इस पृथ्वी के घूमने से ही सूर्य, चंद्र, नक्षत्र आदि का उदय, अस्त आदि व्यवहार बन जाता है, इत्यादि। तथा यह पृथ्वी एक विशेष वायु के निमित्त से ही घूमती है।

तथा दूसरे कोई २ वादी पृथ्वी का हमेशा अधोगमन ही मानते है। एवं कोई २ आधुनिक पंडित अपनी बुद्धि में यों मान बैठे हैं कि पृथ्वी दिन पर दिन सूर्य के निकट होती चली जा रही है। इसके विरूद्ध कोई २ विद्वान, प्रतिदिन पृथ्वी को सूर्य से दूरतम होती हुई मान रहे हैं। इसी प्रकार कोई २ परिपूर्ण जल भाग से पृथ्वी को उदित हुई मानते हैं।

किंतु उक्त कल्पनायें प्रमाणों द्वारा सिद्ध नहीं होती हैं। थोड़े ही दिनों में परस्पर एक दूसरे का विरोध करने वाले विद्वान खड़े हो जाते हैं और पहले पहले के विज्ञान या ज्योतिष यंत्र के

प्रयोग भी युक्तियों द्वारा बिगाड़ दिये जाते हैं। इस प्रकार छोटे छोटे परिवर्तन तो दिन रात होते ही रहते हैं ।

इसका उत्तर जैनाचार्य इस प्रकार देते हैं—

भूगोल का वायु के द्वारा भ्रमण मानने पर तो समुद्र, नदी, सरोवर आदि के जल की जो स्थिति देखी जाती है, उसमें विरोध आता है।

जैसे कि पाषाण के गोले को घूमता हुआ मानने पर अधिक जल ठहर नहीं सकता है। अतः भू अचला ही है । भ्रमण नहीं करती हैं। पृथ्वी तो सतत घूमती रहे और समुद्र आदि का जल सर्वथा जहां का तहां स्थिर रहे, यह बन नहीं सकता। अर्थात् गंगा नदी जैसे हरिद्वार से कलकत्ता की ओर बहती है, पृथ्वी के गोल होने पर उल्टी भी बह जायेगी। समुद्र और कुयें के जल गिर पड़ेंगे। घूमती हुई वस्तु पर मोटा अधिक जल नहीं ठहर कर गिरेगा ही गिरेगा।

दूसरी बात यह है कि—पृथ्वी स्वयं भारी है, और अधःपतन स्वभाव वाले बहुत से जल, बालू, रेत आदि पदार्थ हैं जिनके ऊपर रहने से नारंगी के समान गोल पृथ्वी हमेशा घूमती रहे और यह सब ऊपर ठहरे रहें। पर्वत, समुद्र, शहर, महल आदि जहां के तहां बने रहें यह बात असंभव है ।

यहां पुनः कोई भूभ्रमणवादी कहते हैं कि घूमती हुई इस

गोल पृथ्वी पर समुद्र आदि जल को रोके रहने वाली एक वायु है जिसके निमित्त से समुद्र आदि ये सब जहां के तहां ही स्थिर बने रहते हैं।

इस पर जैनाचार्यों का उत्तर—जो प्रेरक वायु इस पृथ्वी को सदा घुमा रही है, वह वायु इन समुद्र आदि को रोकने वाली वायु का घात नहीं कर देगी क्या ? वह बलवान प्रेरक वायु तो इस धारक वायु को घुमाकर कहीं की कहीं फेंक देगी। सर्वत्र ही देखा जाता है कि यदि आकाश में मेघ छाये हैं और हवा जोरों से चलती है, तब उस मेघ को धारण करने वाली वायु को विध्वंस करके मेघ को तितर वितर कर देती है, वे बेचारे मेघ नष्ट हो जाते हैं, या देशांतर में प्रयाण कर जाते हैं।

उसी प्रकार अपने बलवान वेग से हमेशा भूगोल को सब तरफ से घुमाती हुई जो प्रेरक वायु है। वह वहां पर स्थिर हुये समुद्र, सरोवर आदि को धारने वाली वायु को नष्ट भ्रष्ट कर ही देगी। अतः बलवान प्रेरक वायु भूगोल को हमेशा घुमाती रहे और जल आदि की धारक वायु वहां बनी रहे, यह नितांत असंभव है।

पुनः भूभ्रमणवादी कहते हैं कि–पृथ्वी में आकर्षण शक्ति है। अतएव सभी भारी पदार्थ भूमि के अभिमुख होकर ही गिरते हैं। यदि भूगोल पर से जल गिरेगा तो भी वह पृथ्वी की ओर ही गिरकर वहां का वहां ही ठहरा रहेगा। अतः वह समुद्र आदि अपने २ स्थान पर ही स्थित रहेंगे।

इस पर जैनाचार्य कहते हैं। कि—आपका कथन ठीक नहीं

है। भारी पदार्थों का तो नीचे की ओर गिरना ही दृष्टिगोचर हो रहा है। अर्थात्—पृथ्वी में १ हाथ का लम्बा चौड़ा गड्ढा करके उस मिट्टी को गड्ढे की एक ओर ढलाऊ ऊंची कर दीजिये। उस पर गेंद रख दीजिये, वह गेंद नीचे की ओर गड्ढे में ही ढुलक जायेगी। जबकि ऊपर भाग में मिट्टी अधिक है तो विशेष आकर्षण शक्ति के होने से गेंद को ऊपर देश में ही चिपकी रहना चाहिये था, परन्तु ऐसा नहीं होता है। अतः कहना पड़ता है कि भले ही पृथ्वी में आकर्षण शक्ति होवे, किन्तु उस आकर्षण शक्ति की सामर्थ्य से समुद्र के जलादिकों का घूमती हुई पृथ्वी से निरछा, या दूसरी ओर गिरना नहीं रुक सकता है।

जैसे कि प्रत्यक्ष में नदी, नहर आदि का जल ढलाऊ पृथ्वी की ओर ही यत्र तत्र किधर भी बहता हुआ देखा जाता है और लोहे के गोलक, फल आदि पदार्थ स्वस्थान से च्युत होने पर (गिरने पर) नीचे की ओर ही गिरते हैं।

इस प्रकार जो लोग आर्य भट्ट या इटली, यूरोप आदि देशों के वासी विद्वानों की पुस्तकों के अनुसार पृथ्वी का भ्रमण स्वीकार करते हैं और उदाहरण देते हैं कि—जैसे अपरिचित स्थान में नौका में बैठा हुआ कोई व्यक्ति नदी पार कर रहा है। उसे नौका तो स्थिर लग रही है और तीरवर्ती वृक्ष मकान आदि चलते हुये दिख रहे हैं। परन्तु यह भ्रम मात्र है, तद्वत् पृथ्वी की स्थिरता की कल्पना भी भ्रम मात्र है।

इस पर जैनाचार्य कहते हैं कि—साधारण मनुष्यों को भी थोड़ासा ही घूम लेने पर आंखों में घूमनी आने लगती है, कभी २ खण्ड देश में अत्यल्प भूकम्प आने पर भी शरीर में कपकपी, मस्तक में भ्रांति होने लग जाती है। तो यदि डाक गाड़ी के वेग से भी अधिक वेग रूप पृथ्वी की चाल मानी जायेगी, तो ऐसी दशा में मस्तक, शरीर, पुराने गृह, कूपजल आदि की क्या व्यवस्था होगी।

बुद्धिमान स्वयं इस बात पर विचार कर सकते हैं।

सूर्य, चन्द्र के बिंब की सही संख्या का स्पष्टीकरण

सर्वत्र ज्योतिर्लोक का प्रतिपादन करने वाले शास्त्र तिलोयपण्णत्ति, त्रिलोकसार, लोकविभाग, श्लोकवार्तिक, राजवार्तिक, आदि ग्रन्थों में सूर्य के विमान, $\frac{४८}{६१}$ योजन व्यास वाले एवं इससे आधे $\frac{२४}{६१}$ योजन की मोटाई के हैं। और चन्द्र विमान $\frac{५६}{६१}$ योजन व्यास वाले एवं $\frac{२८}{६१}$ योजन की मोटाई वाले है।

परन्तु राजवार्तिक ग्रन्थ जोंकि ज्ञानपीठ से प्रकाशित है उसके हिन्दी टीकाकार प्रोफेसर महेन्द्रकुमारजी ने उसमें हिन्दी में ऐसा लिख दिया है कि—सूर्य के विमान की लम्बाई ४८$\frac{१}{६१}$ योजन है, तथा चौड़ाई २४$\frac{१}{६१}$ योजन है। उसी प्रकार चन्द्र के विमान की लम्बाई ५६$\frac{१}{६१}$ योजन है और चौड़ाई २८$\frac{१}{६१}$ योजन है। यह नितान्त गलत है।

राजवार्तिक की मूल संस्कृत में चतुर्थ अध्याय के १२वें सूत्र में—सूर्य, चन्द्र के विमान का वर्णन करते हुये "**अष्टचत्वारिंशद्योजनैकषष्टि भागविष्कंभायामानि तत्त्रिगुणाधिकपरिधीनि चतुर्विंशतियोजनैकषष्टिभागबाहुल्यानि अर्धगोलकाकृतीनि**" इत्यादि अर्थात्—यह सूर्य के विमान एक योजन के इकसठ भाग में से अडतालीस भाग प्रमाण आयाम वाले कुछ अधिक त्रिगुणी परिधि वाले एक योजन के इकसठ भाग में से २४ भाग बाहुल्य (मोटाई) वाले अर्ध गोलक के समान आकार वाले हैं। ४८/६१ व्यास। २४/६१ मोटाई।

उसी प्रकार चन्द्र के विमान के वर्णन में—"**चन्द्रविमानानि षट्पंचाशत् योजनैकषष्टिभागविष्कंभायामानि अष्टाविंशति-योजनैकषष्टिभागबाहुल्यानि**" **इत्यादि** । अर्थात्—चन्द्र के विमान एक योजन के ६१ भाग में से ५६ भाग प्रमाण व्यास वाले एवं एक योजन के ६१ भाग में से २८ भाग मोटाई वाले हैं। ५६/६१ व्यास। २८/६१ मोटाई।

इसी प्रकार की पंक्ति को रखकर स्वयं ही विद्यानंद स्वामी ने श्लोक-वार्तिक में उसका अर्थ ४८/६१ योजन मानकर उसे लघु योजन बनाने के लिये पांच सौ से गुणा करके कुछ अधिक ३९३ की संख्या निकाली है। देखिये—श्लोकवार्तिक अध्याय तीसरी का सूत्र १३वां।

"अष्टचत्वारिंशद्योजनैकषष्टिभागत्वात् प्रमाणयोजनापेक्षया सातिरेकत्रिनवतिशतत्रयप्रमाणत्वादुत्सेधयोजनापेक्षया दूरोदयत्वाच्च स्वाभिमुखलंबीद्धप्रतिभाससिद्धेः" ।

अर्थ—बड़े माने गये प्रमाण योजन की अपेक्षा एक योजन के इकसठ भाग प्रमाण सूर्य है। चूंकि चार कोस के छोटे योजन से पांचसौ गुणा बड़ा योजन होता है। अतः अड़तालीस को पांचसौ से गुणा करने पर और इकसठ का भाग देने से ३९३ $\frac{२७}{६१}$ प्रमाण छोटे योजन से सूर्य होता है।

इस प्रकार ३९३ $\frac{२७}{६१}$ योजन का सूर्य होना है। और उगते समय यहां से हजारों (बड़े) योजनों दूर सूर्य का उदय होने से व्यवहित हो रहे मनुष्यों के भी अपने-अपने अभिमुख आकाश में लटक रहे दैदीप्यमान सूर्य का प्रतिभासपना सिद्ध है। इत्यादि।

इस प्रकार विद्यानंदि स्वामी ने **"अष्टचत्वारिंशद्योजनैक षष्टिभाग"** का अर्थ $\frac{४८}{६१}$ योजन करके इसे महायोजन मान कर ५०० से गुणा करके कुछ अधिक ३९३ प्रमाण लघु योजन बनाया है। इसको हिन्दी भी पं० माणिकचंदजी ने इसीके अनुसार की है। जब कि प्रो० महेन्द्रकुमारजी इस पंक्ति का अर्थ ४८ $\frac{१}{६०}$ योजन कर गये हैं। यदि इस संख्या में लघु योजन करने के लिये ५०० का गुणा करें तो—४८ $\frac{१}{६०}$ × ५०० = २४०८ $\frac{१}{३}$ संख्या आती है जो कि अमान्य है। तथा यदि $\frac{४८}{६१}$ में पांच सौ का गुणा करें तो $\frac{४८}{६१}$ × ५०० = ३९३ $\frac{२७}{६१}$

प्रमाण सही संख्या प्राप्त होती है जो कि श्री विद्यानंद स्वामी ने निकाली है। इसलिये कोई विद्वान् ऐसा कहते हैं कि सूर्य बिंब चन्द्र बिंब के प्रमाण में जैनाचार्यों के दो मत हैं। यह बात गलत है क्योंकि गलत होने से दो मत नहीं हो सकते हैं। जैनाचार्यों के सभी शास्त्रों में सूर्य बिंब, चन्द्र बिंब आदि के विषय में एक ही मत है इसमें विसंवाद नहीं है।

ज्योतिर्लोक सम्बन्धि ज्योतिर्वासी देवों का सामान्यतया वर्णन समाप्त हुआ, विशेष जानकारी के लिए इस विषय सम्बन्धि ग्रन्थों का अवलोकन करना चाहिए।

इस लघु पुस्तिका में महान् ग्रन्थों का सार रूप संकलन मैंने अपनी अल्प बुद्धि से मात्र गुरु के प्रसाद से ही प्रस्तुत किया है। पाठक गण! सच्चे देव शास्त्र गुरु के प्रति अपनी श्रद्धा को दृढ़ रखते हुए उनकी वाणी पर निःशंक विश्वास करके सम्यकदृष्टि बनकर स्वर्ग-मोक्ष को प्राप्ति करें। यही शुभ भावना है।

———